अमृतं तू विद्याः

इतः पूर्णः ततः पूर्णः पूर्णात्पूर्णः परात्परम् । पूर्णानन्द प्रपद्येऽहं सद्गुरू शंकर स्वयम् ।।

परम ज्ञान प्रकाश

नवम्बर, २०२५	योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः । स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ।। "जो अन्तःकरण में सुख का अनुभव करता है, जो कर्मठ है और अन्तःकरण में ही रमण करता है तथा जिसका लक्ष्य अन्तर्मुखी होता है वह सचमुच पूर्ण योगी है। वह परब्रह्म में मुक्ति पाता है और अन्ततोगत्वा ब्रह्म को प्राप्त करता है।"	वर्ष — ५६ अंक : ११

—: प्रार्थना :—

आज जगा दो निर्मल मन में, जिससे अर्चन कर पाऊँ।
देव तुम्हारे चरण कमल में, सब कुछ अर्पण कर पाऊँ।।१।।
जीवन—ज्योति जगे अविरल गति, से न कभी गतिहीन बनूँ।
दीनबंधु अपना लो मुझको, मन से नहीं मलीन बनूँ ।।२।।
चंचल मन को तुझमें नितप्रति, भरकर भाव लगाता जाऊँ।
साधन पथ पर बढ़ूँ निरन्तर, श्रद्धा भाव बढ़ाता जाऊँ।।३।।
भर दो दृढ़ विश्वास हृदय में, जड़ता दूर हटे मन से।
सेवा में रत रहूँ निरन्तर, हार न मानू जीवन से।।४।।
अन्तरतम की ओर अग्रसर, होकर पाऊँ जीवन—तत्त्व।
जग से नष्ट मोह हो दृगगत, एकमेव में देखूँ सत्त्व।।५।।

— रामलखन सिंह 'मयंक'

ΨΨΨ

परम ज्ञान प्रकाश

(आध्यात्मिक मासिक)

प्रकाशन कार्यालय

श्री अद्वैत स्वरूप संन्यास आश्रम, परमपुरी, ग्राम व पोस्ट–रायपुरचौर, निकट–रेलवे स्टेशन सासाराम से 14 कि.मी. गुप्ताधाम वाले रोडपर, जिला–रोहतास,(बिहार), पिन कोड–821113.

मो०–7372000511

संस्थापक

श्रीमत्परमहंस परिब्राजकाचार्य परमश्रद्धेय

सद्‌गुरुदेव

ब्रह्मलीन श्री श्री 108 श्रीमत्स्वामी परमज्ञानानन्दपुरीजी महाराज

सम्पादक

डॉ नरेन्द्र तिवारी 'ज्योतिर्विद'

मो०–9839143791

कार्यकारी सम्पादक

श्री जगदीश प्र० सिन्हा 'दयानिधि'

मो०–9334319012

सह–सम्पादक

स्वामी प्रज्ञानन्दपुरीजी

मो०–7060862109

E-mail ID:
paramgyanprakash@gmail.com

मो०–7372000512

सद्‌गुरु–धाम

श्री गुरु मन्दिर नंगली तीर्थ,

प़त्रा० सकौती टाण्डा, भाया– मण्डोरा, जिला–मेरठ (उ०प्र०)

प्रमुख शाखा केन्द्र

1. ***श्री अद्वैत स्वरूप संन्यास आश्रम,*** सद्‌गुरुनगर ग्राम व पो०–भरमाड़, तह०–ज्वाली, जिला–काँगड़ा (हिमाचल प्रदेश) मो– 09418193892
2. ***श्री अद्वैत स्वरूप संन्यास आश्रम,परमधाम,*** एम०–3 शास्त्री नगर, नई दिल्ली–52, मो०–09999752158
3. ***श्री अद्वैत स्वरूप हीरापुरी सत्संग भवन,*** 613/7 पंचकुला, (हरियाणा) मो०–09463205587,09417255989
4. ***श्री अद्वैत स्वरूप संन्यास आश्रम,*** कत्था फैक्ट्री के पीछे, हजारी बाग, नित्यानन्द स्वामी मार्ग, कनखल, हरिद्वार(उत्तराखण्ड)मो० 09999801789,09999752158
5. ***श्री अद्वैत स्वरूप संन्यास आश्रम,*** मथुरा बांध, पो० व जिला–गढ़वा (झारखण्ड) मो० 09431338705
6. ***श्री अद्वैत स्वरूप संन्यास आश्रम परम तपोधाम,*** ग्राम–नागनाथ पुरवा, पो–सिगहा–चन्दा, जिला–गोण्डा (उ०प्र०) मो.–9935027850
7. ***श्री अद्वैत स्वरूप संन्यास आश्रम,*** 318–बी आवास विकास जनकपुरी,पो० इज्जतनगर, बरेली (उ०प्र०)
8. ***श्री अद्वैत स्वरूप संन्यास आश्रम,***ग्राम–मोर डिहरी, पो०–पड़रावाँ, औरंगाबाद (बिहार), मो०– 8002528014
9. ***श्री अद्वैत स्वरूप संन्यास आश्रम,*** ग्रा० व पो०– सोनबरसा, औरंगाबाद (बिहार) मो०–9199603768
10. *श्री अद्वैत स्वरूप संन्यास आश्रम,* ग्राम व पो०कारा, जिला–औरंगाबाद (बिहार) मो०–9955655225
11. ***श्री अद्वैत स्वरूप संन्यास आश्रम,*** अखिल भारतीय श्री परमधाम, नसरुल्लापुर, बदायूँ (उ.प्र)
12. ***श्री अद्वैत स्वरूप संन्यास आश्रम,*** श्री ठाकुर द्वारा गोसाई गोवर्धन, बालापुरीजी, केशव धाम, टॉगेल रोड, ग्राम–सिरसगढ़, पो० मुलाना, अम्बाला (हरियाणा) मो०–9315686000
13. ***श्री अद्वैत स्वरूप हीरा परमज्ञान आश्रम,*** स्वामी परम नगर (बंगा रोड), खोथरा रोड, फगवाड़ा, जिला– कपूरथला–14441 (पंजाब) मो०–7973512449
14. ***श्री अद्वैत स्वरूप संन्यास आश्रम,*** ग्राम–मकराईन, पो०–डालमियाँ नगर, जिला–रोहतास (बिहार) मो०–99399552856, 8102963320
15. ***श्री अद्वैत स्वरूप संन्यास आश्रम,*** परमनगर, नियर–माइको, सासाराम, रोहतास (बिहार) मो०–7992457251, 9473053852
16. ***श्री अद्वैत स्वरूप संन्यास आश्रम,*** ग्राम गुंजीयाबोर, पो०–हसौद, वाया–बिर्रा, जिला–जाजंगीर (चांपा), छत्तीसगढ़–495661, मो०–09430477071
17. **श्री अद्वैत स्वरूप संन्यास आश्रम,** लीलाचक, पो. सन्सा, जिला–औरंगाबाद (बिहार)
18. **श्री अद्वैत स्वरूप संन्यास आश्रम,** टीपा, पो0 नौहट्टा (रोहतास)। मो0– **6205217308**

*

अनुक्रमणिका

1. गुरु–भक्ति 03
2. सम्पादकीय 04
3. श्री परमहंस उवाच 05
4. श्री स्वरूप वचनामृत 06
5. श्री हीरा सन्देश 08
6. अमृत प्रसाद 13
7. प्रवचन पीयूष 17
8. प्रवचन सुधा 19
9. सत्संग सुधा 22
10. कथा–लोक 24
11. विचारों के झरोखे से 26
12. पुष्पांजलि– शुभकर्म करो.. 27
13. दीपावली लक्ष्मी–गणेश.. 28
14. सा विद्या या विमुच्यते 29
15. आश्रम समाचार 30
16. मासिक राशिफल एवं मुख्य पर्व (माह दिसम्बर) 31
17. विवेक वाटिका 32

*

–: गुरु–भक्ति :–

गुरु गोविन्द करि जानिए, रहिए शब्द समाय।
मिलै तो दण्डवत बन्दगी, नहिं पल–पल ध्यान लगाय।।
गुरु गोविन्द दोउ एक हैं, दूजा सब आकार।
आपा में हैं हरि भजैं, तब पावैं दीदार।।
गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय।।
गुरु को मानुष जानते, ते नर कहिये अन्ध।
होय दुखी संसार में, आगे जम का फन्द ।।

*

–: संत–वचन :–

धार्मिक होनेका पहला लक्षण है प्रसन्न होना। जब कोई व्यक्ति उदास निराश होता है,तो इसे हम बदहजमी कह सकते हैं, धार्मिकता नहीं। –स्वामी विवेकानन्द!

माँ का मूक आशीष मिल जाये,तो दुनिया की कोई ऐसी चीज नहीं जो हमें प्राप्त न हो। दुनिया की तमाम सुख समृद्धि घर बैठे ही मिल जाये। –जैन संत जयमेश शाह!

सम्पादकीय...

''श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि– **अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरषं परम्।।** अर्थात् मनुष्य चाहे निष्काम हो या फल का इच्छुक हो या मुक्ति का इच्छुक ही क्यों न हो, उसे पूरे सामर्थ्य से भगवान् की सेवा करनी चाहिए जिससे उसे पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो सके, जिसका पर्यवसान भगवत्भावनामृत में होता है। इस जगत् के देवताओं के विषय में भ्रान्त धारणा है और विद्वता का दम्भ भरने वाले अल्पज्ञ मनुष्य इन देवताओं को परमेश्वर के विभिन्न रूप मानते हैं। वस्तुतः ये देवता ईश्वर के विभिन्न रूप नहीं होते, किन्तु वे ईश्वर के विभिन्न अंश होते हैं। ईश्वर तो एक है, किन्तु अंश अनेक हैं। वेदों का कथन है–**'नित्यो नित्यानाम'!** अर्थात् ईश्वर एक हैं। ईश्वर ही एकमात्र परमेश्वर हैं और सभी देवताओं को इस भैतिक जगत् का प्रबन्ध करने के लिए शक्ति प्राप्त है। ये देवता जीवात्माएँ हैं **(नित्यानाम्),** जिन्हें विभिन्न मात्रा में भौतिक शक्ति प्राप्त है। वे कभी परमेश्वर–नारायण, विष्णु के तुल्य नहीं हो सकते। जो व्यक्ति ईश्वर तथा देवताओं को एक स्तर पर सोचता है, वह नास्तिक या पाखण्डी कहलाता है। यहाँ तक कि ब्रह्मा तथा शिव जैसे बड़े–बड़े देवता भी परमेश्वर की समता नहीं कर सकते। वास्तव में ब्रह्मा तथा शिवजी जैसे देवताओं द्वारा भगवान् की पूजा की जाती है **(शिवविरिञ्चिनुतम्)**। तो भी आश्चर्य की बात यह है कि अनेक लोग नेताओं की पूजा उन्हें अवतार मान कर करते हैं। **'इह देवताः पद'** इस संसार के शक्तिशाली मनुष्यों या देवता के लिए आया है, लेकिन नारायण, विष्णु, राम या कृष्ण जैसे भगवान् इस संसार के नहीं हैं। वे भौतिक सृष्टि से परे रहने वाले हैं। निर्विशेषवादियों के अग्रणी श्रीपाद शंकराचार्य तक मानते हैं कि नारायण, राम या कृष्ण इस सृष्टि से परे हैं। फिर भी हृतज्ञान अल्पज्ञ मनुष्य तत्काल फल प्राप्त करने हेतु विभिन्न देवताओं की पूजा करते हैं, और उन्हें उनसे फल की प्राप्ति भी होती है, किन्तु वे यह नहीं जानते कि ऐसे फल क्षणिक होते हैं और अल्पज्ञ मनुष्यों के लिए है। भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है कि–

''काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा।।''

अर्थात् ''इस संसार में मनुष्य सकाम कर्मों में सिद्धि चाहते हैं, फलस्वरूप वे देवताओं की पूजा करते हैं। निस्सन्देह इस संसार में मनुष्यों को सकाम कर्म का फल शीध्र प्राप्त होता है।''

पूज्य गुरुदेव ने श्री नंगली साहिब, मेरठ में दिनांक ०७.०६.१९८३ को दिए गए प्रवचन में यह इस बात का उल्लेख किया है कि ''अनन्य प्रेमी कौन होता है? जिसके समान कोई दूसरा न हो उसे अनन्य कहते हैं। अनन्य प्रेमी ही भगवान् के मंजूरे–नज़र होते हैं। भगवान् ने कहा है–**'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्'।।** अर्थात् जो मुझे अनन्य चित्त से भजता है और मेरा चिन्तन करता है, उस नित्य शरणागत भक्त का मैं योगक्षेम वहन करता हूँ। अर्थात् उस अप्राप्य श्रेयस् को प्राप्त कराता हूँ और प्राप्त की रक्षा करता हूँ। यहाँ गुरु दरबार में आने का मतलब यही है कि हमें उस सत्य की, परमात्मा की प्राप्ति हो जाये और भगवान् की प्राप्ति उसे होती है जो उनका अनन्य प्रेमी होता है।''

अन्त में मैं अपने परमाराध्य पूज्यपाद श्री सद्गुरुदेव भगवान्‌जी के चरणों में प्रार्थना करता हूँ कि वे अपनी कृपा–दृष्टि हम सब पर बनाए रखें। गुरु दरबार की ओर से प्रकाशपर्व दीपावली एवं छठ के शुभ अवसर पर पूज्य गुरु भगवान् का अशेष आशीर्वाद आप सभी को प्रप्त हो! आपके पत्र की प्रतिक्षा में!

!!''जय सच्चिदानन्द''!!

श्रीगुरुचरणेशु
जगदीश प्र० सि०'दयानिधि'
कार्यकारी सम्पादक

*

श्री परमहंस उवाच :–

–: मनुष्य के प्रकार :–

जगतवंद्य, अनन्तश्री विभूषित श्री श्री १००८ श्रीमत्परमहंस दयालजी महाराज ने 'मनुष्य की प्रकृति और प्रकार' पर प्रकाशपात किया है–'संसार में चार प्रकार के मनुष्य दिखाई देते हैं। यदि उनकी स्थिति पर विचार किया जाए तो यह केवल नाम के मनुष्य है, वास्तव मे पशु हैंः– (1) नर पशु (2) गुरु पशु (3) त्रिया पशु (4) वेद पशु। इसके अतिरिक्त वास्तविक मनुष्य की बात ही और है। जिसकी आकृति मनुष्य जैसी है, वह मनुष्य नहीं, बल्कि मनुष्य वह है जिसमें सत्य, धैर्य, शील, वीरता, दया, सन्तोष इत्यादि गुण हों। नहीं तो खाना, पीना, सोना इत्यादि क्रिया तो जैसे मनुष्य की हैं, वैसे पशु की, दोनों में अन्तर नहीं है। – सम्पादक!

संसार में चार प्रकार के मनुष्य दिखाई देते हैं। यदि उनकी स्थिति पर विचार किया जाए तो यह केवल नाम के मनुष्य है, वास्तव मे पशु हैंः– **(1) नर पशु (2) गुरु पशु (3) त्रिया पशु (4) वेद पशु।**

(1) नर पशु– वह है जो बिना जाँच किए दूसरों के कहने वर विश्वास करके उसका पीछा करें। जैसे किसी ने कहा है कि कव्वा तेरा कान ले गया तो वह व्यक्ति अपने कान को तो टटोले नहीं और कव्वे के पीछे दौड़ पड़े।

(2) गुरु पशु– वह है जो बिना विचार किये गुरु धारण कर ले। गुरु को समझ–बूझ कर और जांच–परख कर धारण करना चाहिए और देख लेना चाहिए कि इसकी युक्ति में हमारा उद्धार हो सकेगा और जिस स्वामी की यह भक्ति बतलाता है, वह हमारा कल्याण कर सकेगा तथा आवागमन से हमको छुड़ा सकेगा? गुरु सात हैंः–

गुरु गुरु कहत सकल संसारा,
गुरु सोई जिन तत्व विचारा।
प्रथम गुरु हैं पिता व माता,
रज वीरज के सोई दाता।
दूसर गुरु हैं मन की दाई,
ग्रह वास की बन्द छुड़ाई।
तीसर गुरु जो धरिया नामा,
ले – ले नाम पुकारे गामा।
चौथे गुरु जिन दीक्षा दीना,
जग व्यवहार रहित सब चीना।
पांचवें गुरु जिन वैष्णव कीना,
राम नाम को सिमरण दीना।
छंटवें गुरु जिन भ्रम गढ़ तोड़ा,
दुविधा मेट एक से जोड़ा।
सातवें गुरु सत् शब्द लखाया,
जहां का तत्व ले तहां समाया।।
'कबीर' सात गुरु संसार में, सेवक सब संसार।
सत्गुरु सोई जानिए, भव जल उतारे पार।।

(3) त्रिया पशु– वह है जो स्त्री के बन्धन में फंस जाते हैं। उनके लिए सबसे बड़ी आज्ञा उनकी स्त्री का वचन है।

(4) वेद पशु– वह है जो वेदों को पढ़ते तो हैं परन्तु उनका वास्तविक अर्थ नहीं समझते हैं। शब्दों के झंझट और बखेड़े में पड़े हुए हैं और केवल शब्दों की उधेड़बुन में लगे रहते हैं।

इसके अतिरिक्त वास्तविक मनुष्य की बात ही और है। जिसकी आकृति मनुष्य जैसी है, वह मनुष्य नहीं बल्कि मनुष्य वह है जिसमें सत्य, धैर्य, शील, वीरता, दया, सन्तोष इत्यादि गुण हों। नहीं तो खाना, पीना, सोना इत्यादि क्रिया तो जैसे मनुष्य की हैं, वैसे पशु की, दोनों में अन्तर नहीं है।

श्री स्वरूप वचनामृत :–

आधुनिक उपदेशक

परमाराध्य अनन्तश्री विभूषित श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री श्री १००८ श्री मत्परमहंस स्वामी स्वरूपानन्दपुरीजी महाराजजी ने आधुनिक उपदेशकों के सम्बन्ध में बहुत ही उपयोगी सन्दर्भ को उद्‌घाटित किया है तथा हमें ऐसे उपदेशकों से सावधान रहने की चेतावनी भी दी है–''भारतवर्ष में काफी स्थानो पर यह देखने में आया है कि जो त्यागी महात्मा बने हैं उन्होंने आत्मधन गुरु से प्राप्त करके अपना और जनता का उद्धार किया और ठीक उपकारी साधु बनकर भोले जीवो को मार्ग दिखाया। उनकी देखा–देखी बाद में उनका परिवार जब भूखा रहने लगा या देखा कि बस और तो कोई व्यापार है नहीं तो उनके नाम दुकानदारी बनाकर लोगों को भटकाने लगे। उन्होंने प्रमाण यह दिया कि हम गुरु के पुत्र हैं या पोते हैं इसलिए हमारा अधिकार है, क्योंकि उनके पश्चात् और है ही कौन? बस पूरा स्वांग रचाकर चेले बनाना सीख लिया।''   – सम्पादक!

एक दिन सत्संग में श्री महाराजजी ने कहा कि सर्व साधारण उपदेशक अपने आपको गुरु अथवा अधिकारी बनाकर अपना व्यापार कथा वाचने का आरम्भ कर देते है, जिससे ना तो उनका ही लोक–परलोक बनता है और ना ही सुनने वालों का। इस प्रकार के उपदेशको ने गंन्थों से ही कार्य लेना आरम्भ कर रखा है और महापुरुषों के नाम पर अपने परिवार तथा अपने परिवार का तथा पेट का पालन–पोषण कर रहे हैं। उनका उपदेश सुनकर सर्व साधारण जनता यही अर्थ निकालती है कि कथा के पश्चात् तो पैसे का झगड़ा होगा। इससे तो हमारा व्यापार ही ठीक है कई बार तो लोग यहाँ तक कहते हैं यदि हम गृहस्थी उत्पन्न न होते तो इन बाबा लोगों को रोटी कौन देता? अंत में यह भी हमारे ही द्वार पर आते हैं सो भाई ऐसे श्रोताओं का क्या दोष जबकि सुनाने वाले ही पथ भ्रष्ट हो चुके हैं। कभी समय था कि गृहस्थी लोग गुरुओं और ऋषियों के पास कठिन यात्रा करके जाते थे और वहाँ लोग वनो के फल इत्यादि खाकर निर्वाह करते थे। वह अपने तपोबल से आत्मिक आनंद में मगन रहते थे। आज के वातावरण ने सबको भ्रष्ट कर दिया है। वनो में तो बस्तियॉ बन गई है और यदि कही वन है भी तो फलदार वृक्ष नहीं है। यदि भूलचुक से है तो कुछ एक पूर्ण महात्मा वहाँ बैठे हैं। परंतु गृहस्थी तो ऐसे मंदकर्मी हैं कि कालचक्र ने अपने जाल में उन्हे ऐसे फँसा रखा है कि उनके पास समय ही नहीं है कि जाकर अपने जीवन का ध्येय समझ सके। चौबीस घंटे दुकान, खेती–बाड़ी आदि सांसरिक कार्यो में लगे रहकर केवल खान–पान और भोग–विलास में जन्म गवाँ रहे है। सुन्दरता, धन, परिवार, भवन, भूमि और बाहुबल सबकुछ है, परंतु भक्ति और सच्ची जिज्ञासा का नाम तक नही। फिर इन्ही लोगों का अन्न, जल खाकर उपदेशक भी ऐसे प्रगट हो चुके है जिनको स्वयं पता नही हम कौन हैं ? दूसरी ओर वे समय के गुरु कहलाकर प्राचीन लोगों का स्वांग दिखाते हैं ताकि गृहस्थी उनको भी वैसे ही माना करे।

भारतवर्ष में काफी स्थानों पर यह देखने में आया है कि जो त्यागी महात्मा बने हैं उन्होंने आत्मधन गुरु से प्राप्त करके अपना और जनता का उद्धार किया और ठीक उपकारी साधु बनकर भोले जीवों को मार्ग दिखाया। उनकी देखा–देखी बाद में उनका परिवार जब भूखा रहने लगा या देखा कि बस और तो कोई व्यापार है नहीं तो उनके नाम दुकानदारी बनाकर लोगों को भटकाने लगे। उन्होंने प्रमाण यह दिया कि हम गुरु के पुत्र हैं या पोते हैं

इसलिए हमारा अधिकार है, क्योंकि उनके पश्चात् और है ही कौन? बस पूरा स्वांग रचाकर चेले बनाना सीख लिया। बेचारे चेले क्या करे। प्यासे ने तो पानी पीना ही है। यदि आवश्यकता के समय पानी अच्छा न भी मिले तो भी प्यास बुझाएगा ही। जब ऐसे लोगों का कुछ व्यापार बिगड़ने लगता है तो वे लोगो के घरों में जा–जाकर कथा सुनाना आरम्भ कर देते है। इस पर एक दृष्टांत हैः–

किसी नगर में एक पंडित जी रहा करते थे। जब वह भूखे मरने लगे तब अपने पूर्वजों के कार्य–व्यवहार अपनाना शुरू कर दिया और भोले–भाले सेवकों को अपने हाथ में कर लिया। एक दिन पंडित जी किसी जाट के पास खेत में गये उससे कहने लगे आओ, चौधरी जी, हमारी कथा सुन लो, जाट बोला–''पंडित जी, मेरे पास समय नही है कि खेती–बाड़ी छोडूँ और कथा सुनकर पेट भरूँ।''

कुछ दिन पश्चात् पंडित जी ने फिर विचार किया कि जमीदार धनवान है काफी धन भेंट में मिलेगा। लोभ ने तंग किया तो जाट से कहने लगाः–'आज तो कथा अवश्य सुन लो'। चौधरी बोला–'यदि कथा अवश्य सुनानी है तो सामने बैठकर कथा सुनाओ मैं गेहूँ निकालता जाऊँगा और तेरी कथा भी सुनूंगा।'' पंडित जी पूजा का सब सामान घर से लाकर रखा और गणेश पूजन आरम्भ हुआ। तब पंडित जी बोले–''चौधरी जी आकर संकल्प तो कर जाओ ताकि तुम्हारे नाम की कथा आरम्भ हो जाये। फिर काम करते रहना।' जाट क्रोध से भरता हुआ आया और कहने लगा–'जो कार्य करवाना है शीघ्र करवा लो।' तब पंडित जी ने जाट को सामने बिठा लिया और कहा–'विचार करना जो बात हम कहे वैसे करते जाना।' जाट ने कहा–'बहुत अच्छा।' तब पंडित जी ने कहाः–'हाथ में पानी लो' जाट ने बोला–'हाथ में पानी लो', इधर पंडितजी को क्रोध आना शुरू हो गया। क्रोधित होकर पंडितजी बोले–'अरे उल्लू तुम पानी हाथ में लो'। जाट बोला– 'अरे उल्लू तुम पानी हाथ में लो' पंडितजी को बड़ा क्रोध आया और बोला–'मूर्ख, तुझे लज्जा नहीं आती?' जाट बोला–'मूर्ख, तुझे लज्जा नही आती?' यह सुनकर पंडितजी ने एक थप्पड़ लगा दिया। इधर जाट का हाथ उठा और थप्पड़ लगा तों पंडितजी अपनी अज्ञानता पर विचारकर रोने लगे। तो जाट भी रोना आरम्भ कर दिया। पंडितजी अपनी पूजा का सामान उठाकर चल दिये तो जाट ने समझा की कथा और पूजन हो चुका है वह भी चुप–चाप जाकर अपने काम में लग गया।

पंडितजी पश्चाताप् करते हुए घर वापिस चले गये। जाते ही पंडितानीजी ने पूछा–'सुनाओ जी सेवकों से क्या–क्या लाये हो आज तो बड़े यजमान के पास गये थे।' तब पंडितजी बिगड़कर कहने लगे–'जाट से तो मैं बहुत कुछ ले आया हूँ अब तू उसकी पत्नी से बाकी रहती भेंट जाकर ले आना।''

सो भाई गुरुमुखों यह है मंद जिज्ञासु की दशा। समय बदलता जा रहा है। ऐसे घोर अंधकार में सत्यता भी अपना बिस्तर बांधे घर जाने को बैठी है, उस प्रभु की अपार कृपा से ही पूर्ण गुरु और संत का मिलाप होता है और पूर्ण संत को पूर्ण जिज्ञासु ही जान सकता है, क्योंकि जो 40 सेर है वही मन कहलाता है, कम चाहे छटांग क्यों ना हो पूरा मन नहीं कहलाता। बस मन को मन वश में करेगा, संत को पूर्ण होना चाहिए। आवश्यकता पड़ी तो पूर्ण जिज्ञासु ही उसके पास जायेगा। *

अभिमान ने बड़े–बड़े योगी–मुनीश्वरों को भी गिरा दिया। लेकिन आजतक ऐसा कभी नहीं सुना गया कि भगवान के सेवक का पतन हुआ। सेवक को अभिमान छू भी नहीं सकता। भगवान को मांगना ही है तो भगवान को ही माँगो। अपनी इच्छाओं को प्रभु की इच्छाओं से जोड़ दो– यही तुम्हारा धर्म है, यही तप है। – स्वामी परम!

श्री हीरा संदेश :–

–: ध्यान परम प्रयत्न साधन :–

''पूज्यपाद श्री श्री १००८श्रीमत्परमहंस सदगुरु श्रीस्वामी हीरानन्दपुरीजी महाराज ''ध्यान परम प्रयत्न साधन'' विषयक अति गूढ़ विषय को प्रतिपादित करने की कृपा की है– ''अपने मन और इन्द्रियों को सर्व ओर से अथवा सर्व विषयों से हटाकर परब्रह्म को जानने के लिए उन्हीं का चिन्तन करने में तत्पर हो गए। ध्यान करते–करते उन्हें परमात्मा की महिमा का अनुभव हुआ। उन्होंने उस परम देव परब्रह्म पुरुषोत्तम की स्वरूपभूत अचिंत्य दिव्य शक्ति का साक्षात्कार किया जो अपने ही गुणों सत्व, रज, तम से ढकी है। अर्थात् जो देखने में त्रिगुणमयी प्रतीत होती है परन्तु वास्तव में तीनों गुणों से परे है। तब से वे महर्षि गण इस निर्णय पर पहुँचे कि काल से लेकर आत्मा तक जितने जगत् के कारण पहले बतलाए गए हैं उन समस्त कारणों के जो अधिष्ठाता स्वामी हैं अर्थात् वे सब जिनकी आज्ञा और प्रेरणा पाकर अथवा जिनकी शक्ति के किसी एक अंश को लेकर वे अपना–अपना कार्य करने में समर्थ होते हैं, वे एक सर्व शक्तिमान् परमेश्वर ही इस जगत् का वास्तविक कारण हैं दूसरा कोई नहीं।''

– सम्पादक!

श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी ध्यान द्वारा ही परमेश्वर को आत्मस्वरूप करके प्रत्यक्ष होना लिखा है, अन्यथा नहीं। श्वेताश्वतरोपनिषद् अध्याय १ मंत्र १ वेदज्ञ महर्षियों का विवेचन–

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता
जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु
वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्।।१।१।।

अर्थ–ब्रह्म विषयक चर्चा करनेवाले कुछ जिज्ञासु आपस में कहते हैं कि हे वेदज्ञ महर्षियों! इस जगत् का मुख्य कारण ब्रह्म कौन है? हम लोग किससे उत्पन्न हुए हैं, किससे जी रहे हैं और किसमें हमारी सम्यक प्रकार से स्थिति है तथा किसके अधीन रहकर हम लोग सुख और दुःख में निश्चित व्यवस्था के अनुसार बरत रहे हैं? वे दूसरे मंत्र में आपस में कहने लगे कि वेद शास्त्रों में अनेक कारणों का वर्णन आता है। कहीं तो काल को ही जगत् का कारण बतलाया गया है, क्योंकि समय–समय पर ही सर्व वस्तुओं की उत्पत्ति होती है। जगत् की उत्पत्ति और प्रलय भी समयानुसार ही पढ़ा–सुना जाता है। कहीं स्वभाव को ही जगत् का कारण बतलाया जाता है कि स्वाभाविक ही जगत् की रचना होती है, क्योंकि जिस वस्तु में जो स्वाभाविक शक्ति होती है उसी से उसका कार्य उत्पन्न होना देखा जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि वस्तुगत शक्ति रूप जो स्वभाव है, वह कारण है। कहीं कर्म को ही जगत् का कारण बतलाया गया है, क्योंकि कर्मानुसार ही जीव भिन्न–भिन्न योनियों में भिन्न–भिन्न लक्षण आदि से युक्त होकर उत्पन्न होते हैं। कहीं होनहार को ही कारण बतलाया गया है। कहीं पाँचों महाभूतों को और कहीं जीवात्मा को ही जगत् का कारण बतलाया गया है। अतः हम लोगों को विचार करना चाहिए कि वास्तव में इस समस्त जगत् का कारण कौन है। विचार करने से जाना जाता है कि काल से लेकर पाँच महाभूतों तक बतलाये हुए जड़ पदार्थों में से कोई भी जगत् का कारण नहीं है। वे अलग–अलग तो क्या सब–के–सब मिलकर भी जगत् का कारण नहीं हो सकते, क्योंकि यह सब जड़ होने के कारण किसी एक चेतन के अधीन है इसलिए इन सबमें स्वतंत्र कार्य करने की शक्ति नहीं है। जिन जड़ वस्तुओं के मेल से कोई नवीन चीज उत्पन्न होती है वह उसके संचालक चेतन आत्मा के ही अधीन और उसी के भोगार्थ होती है। इनके अतिरिक्त पुरुष अर्थात् जीवात्मा भी जगत् का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वह सुख–दुःख के हेतु प्रारब्ध के अधीन है। वह भी स्वतंत्र रूप से कुछ नहीं कर सकता। इसलिए जगत् का कारण

तत्त्व कुछ और ही है।।२।

इस प्रकार परस्पर विचार करने पर जब वे युक्तियों और अनुमान से किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके तब सबने कहा कि अब सब–के–सब अन्तर्मुख और एकाग्र वृत्ति द्वारा अपने ही हृदय में ध्यान योग में स्थित हो जाओ। जो परम तत्त्व ध्यान में प्रत्यक्ष होगा उसी को इस समस्त जगत् का कारण मानना चाहिए। उसी समय सब ध्यान योग में स्थित हो गए अर्थात् अपने मन और इन्द्रियों को सर्व ओर से अथवा सर्व विषयों से हटाकर परब्रह्म को जानने के लिए उन्हीं का चिन्तन करने में तत्पर हो गए। ध्यान करते–करते उन्हें परमात्मा की महिमा का अनुभव हुआ। उन्होंने उस परम देव परब्रह्म पुरुषोत्तम की स्वरूपभूत अचिंत्य दिव्य शक्ति का साक्षात्कार किया जो अपने ही गुणों सत्व, रज, तम से ढकी है। अर्थात् जो देखने में त्रिगुणमयी प्रतीत होती है परन्तु वास्तव में तीनों गुणों से परे है। तब से वे महर्षि गण इस निर्णय पर पहुँचे कि काल से लेकर आत्मा तक जितने जगत् के कारण पहले बतलाए गए हैं उन समस्त कारणों के जो अधिष्ठाता स्वामी हैं अर्थात् वे सब जिनकी आज्ञा और प्रेरणा पाकर अथवा जिनकी शक्ति के किसी एक अंश को लेकर वे अपना–अपना कार्य करने में समर्थ होते हैं, वे एक सर्व शक्तिमान् परमेश्वर ही इस जगत् का वास्तविक कारण हैं दूसरा कोई नहीं। आगे मंत्र ३ पढ़ो।।

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन,
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि,
कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः।।

(श्वेता० अ०१ मंत्र ३)

अर्थ–उन्होंने ध्यान योग में स्थित होकर अपने गुणों से ढकी हुई उस परमात्म देव की स्वरूपभूत अचिंत्य शक्ति का साक्षात्कार किया जो परमात्म देव अकेला ही उस काल से लेकर आत्मा तक पहिले बतलाये हुए सम्पूर्ण कारणों पर शासन करता है।

तमेकनेमिंत्रिवृतंषोडशान्तं,
शतार्धारं विंशतिप्रत्यराभिः।
अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं,
त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम्।।

(श्वेता० अ० १ मंत्र ४)

अर्थ–महर्षियों ने उस एक नेमिवाले (इस मंत्र में परमेश्वर की सार्वभौम अचिंत्य शक्ति तथा स्वर्लोक में एक महान् प्रकाशयुक्त दिव्य आनन्दमय चक्र जो धीमी चाल से घूम रहा है, उस ब्रह्म स्वरूप गोल सतचित् आनन्दधन प्रकाश के दर्शन करनेवाले वे महर्षि लोग कहते हैं कि हमने एक ऐसे चक्र को देखा है, जिसमें एक नेमि है। नेमि उस गोल घेरे को कहते हैं जो चक्र के अरों और नाभि आदि सब अवयवों को वेष्ठित किए रहती है तथा यथास्थान बनाये रखती है); (तीन घेरों वाले जिस प्रकार चक्के की रक्षा के लिए उस नेमि के ऊपर लोहे का घेरा चढ़ा रहता है उसी प्रकार इस प्रकाश स्वरूप ब्रह्म चक्र के ऊपर सत, रज, तम, ये तीन गुण ही तीन घेरे हैं); सोलह सिरोंवाले (जिस प्रकार चक्के नेमि पृथक–पृथक सिरों के जोड़ से बनती है उसी प्रकार इस संसार रूप चक्र की प्रकृति रूप नेमि के मन, बुद्धि, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी, ये आठ सूक्ष्म तत्त्व और इन्हीं के आठ स्थूल रूप, इस प्रकार सोलह सिरे हैं), पचास अरे वाले (जिस प्रकार चक्र में अरे लगे रहते हैं जो एक ओर से नेमि के टुकड़ों में जुड़े रहते हैं और दूसरी ओर से चक्के की नाभि में जुड़े रहते हैं, उसी प्रकार इस संसार चक्र में अन्तःकरण की वृत्तियों के पचास भेद पचास अरों की जगह हैं); बीस सहायक अरों वाले तथा (पाँच महाभूतों के कार्य दस इन्द्रियाँ, पाँच विषय और पाँच प्राण यह बीस सहायक अरों की जगह हैं); छः अष्टकों वाले (इस चक्के में आठ–आठ चीजों के छः समूह अंग रूप में विद्यमान हैं) चक्र को देखा छः अष्टक इस प्रकार हैं–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार। गीता के अध्याय ७ मंत्र ४ में इनको आठ प्रकार की प्रकृति कहा गया है। यह गीता के अनुसार पहला अष्टक हुआ त्वचा, चमड़ी, माँस, रक्त, मेद, हड्डी, मज्जा और वीर्य। यह आठ धातुओं का अष्टक इस नर तन में है। यह दूसरा अष्टक हुआ।

अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, और वशित्व। शास्त्र में इनका नाम अष्ट सिद्धियाँ भी है। यह तीसरा अष्टक है।

धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, राग और अनैश्वर्य। यह विद्या अविद्या के गुणयुक्त चौथा अष्टक है। ब्रह्म, प्रजापति, देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितर और पिशाच। यह सुरासुर गुणयुक्त पाँचवाँ अष्टक है।

दया, क्षमा, निन्दा, छल रहित स्तुति, बाहर भीतर की पवित्रता रूपी शौच, अनायास, मंगल, उदारता तथा दान और अस्पृहा। यह आत्मा का कल्याण करनेवाले आत्मा के आठ गुण नाम का छठा अष्टक है। इन्हीं को छः अष्टकों के नाम से कहा गया है। अनेक रूपों वाले एक ही पाश से युक्त जीवों को इस चक्र में बाँधकर रखनेवाली अनेक रूपों में प्रकट आसक्ति रूप एक फाँसी है। देवयान, पितृयान और इसी लोक से एक योनि से दूसरी योनि में जाने का मार्ग, इस प्रकार यह तीन मार्ग हैं। दो निमित्त कर्म हैं– पुण्य कर्म और पाप कर्म। यह दो इस जीव को इस चक्र के साथ–साथ घुमाने में निमित्त हैं और जिसमें अरे टंगे रहते हैं, उस नाभि के स्थान में अज्ञान है। जिस प्रकार नाभि ही चक्के का केन्द्र है, उसी प्रकार अज्ञान जगत् का केन्द्र है। इस चक्र को उन महर्षियों ने देखा।।मंत्र ४।। इसी श्वेताश्वतर का मंत्र ग्यारहवाँ देखो।

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः
क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः।। मंत्र ११।।

(श्वेता० अ० १ मंत्र ११)

उस परमदेव का निरन्तर ध्यान करने से उस प्रकाशमय परमात्मा को जान लेने पर समस्त बन्धनों का नाश हो जाता है। अर्थात् परम पुरुष परमात्मा का निरन्तर ध्यान करते–करते जब साधक उस परमदेव को जान लेता है तब उसके समस्त बन्धनों का सदा के लिए सर्वथा नाश हो जाता है तथा अविद्यादि पाँचों क्लेशों से वह छूट जाता है। क्लेशों का नाश हो जाने के कारण जन्म–मरण का सर्वथा अभाव हो जाता है। जिस ध्यानी के पाँचों क्लेश मिट जाते हैं उसके जन्म–मरण का सदा के लिए अभाव हो जाता है, फिर वह पंच भौतिक शरीर का त्याग करके ब्रह्म तक के महान् से महान् समस्त ऐश्वर्यों की इच्छा न करके आनन्दमय एक रस सर्वथा विशुद्ध कैवल्य पद को प्राप्त होकर पूर्ण काम हो जाता है। आगे मंत्र १२ में देखो।

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः
परं वेदितव्यं हि किंचित्।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा
सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्।।

(श्वेता० अ०१ मंत्र १२)

अर्थ–इसलिए मुमुक्षु को चाहिए कि वह अपने ही भीतर स्थित इस ब्रह्म को ही सर्वदा जाने। क्योंकि इससे बढ़कर जानने योग्य तत्त्व दूसरा कुछ भी नहीं है। भोक्ता (जीवात्मा) भोग्य (जड़ वर्ग) और उनके प्रेरक परमेश्वर इन तीनों को जानकर मनुष्य सबकुछ जान लेता है। इन तीनों भेदों में ब्रह्म ही बतलाया हुआ है ।।१२।। आगे मंत्र १४ वाँ लिखा गया है।

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढ़वत्।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् अ०१ मंत्र १४)

अर्थ–अर्थात् अपने शरीर को नीचे की अरणि और प्रणव को ऊपर की अरणि बनाकर ध्यान के द्वारा निरन्तर मन्थन करते रहने से साधक छिपी हुई अग्नि की भाँति अपने हृदय में स्थित परमेदव परमेश्वर को देखे।।१४।।

अब मंत्र १५ परमेश्वर की व्यापकता दर्शाता है–

तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः
स्त्रोतः स्वरणीषु चाग्निः।
एवमात्माऽऽत्मनि गृह्यतेऽसौ
सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् अ०१ मंत्र १५)

अर्थ–जिस प्रकार तिलों में तेल, दही में घी, सोतों में जल और अरणियों में अग्नि छिपी रहती है, उसी प्रकार वह परमात्मा अपने हृदय में छिपा हुआ है। जो कोई साधक इसको सत्य और संयम रूप तप से देखता रहता है तथा चिन्तन

करता रहता है उसके द्वारा वह ग्रहण किया जाता है।।१५।।

इसी श्वेताश्वतरोपनिषद् के अध्याय २ मंत्र १५ में ज्ञानी के लिए इस प्रकार कहा गया है।

यदाऽऽत्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं
दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् अ०२ मंत्र १५)

अर्थ—उसके पश्चात् जब वह योगी यहाँ दीपक के सदृश (प्रकाशमय) आत्म तत्त्व के द्वारा ब्रह्म तत्त्व को भली—भाँति प्रत्यक्ष देख लेता है, उस समय वह (उस) अजन्मा निश्चल समस्त तत्त्वों से विशुद्ध परमदेव परमात्मा को जानकर सब बन्धनों से सदा के लिए मुक्त हो जाता है। अब आगे तृतीय अध्याय के मंत्र आठ में ज्ञानी महापुरुष के अनुभव की बात कहकर महर्षि परमात्म ज्ञान के फल की दृढ़ता दिखलाते हैं।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं
तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।

(श्वेता० अ०३ मंत्र ८)

अर्थ—अविद्या रूप अन्धकार से अतीत सूर्य की भाँति स्वयं प्रकाशस्वरूप इस महान् पुरुष (परमेश्वर) को मैं जानता हूँ। उसको जानकर ही मनुष्य मृत्यु का उल्लंघन कर जाता है और परमेश्वर की प्राप्ति रूप परम पद को प्राप्त हो जाता है। परम पद की प्राप्ति के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं है।। मंत्र ८।। और इसी अध्याय के मंत्र ११ में कहा गया है कि परमेश्वर के सभी जगह मुख, सिर, हस्त, पाद, गला, नेत्र और श्रोत्र सब इन्द्रियाँ हैं। अर्थात् ईश्वर प्रत्येक स्थान पर कर्म ज्ञानादि स्थूल इन्द्रियों के बिना ही प्रत्येक कार्य करने में समर्थ है और सर्वभूत प्राणियों के हृदय रूपी गुफा में निवास करता है, इसलिए सर्वव्यापी है तथा शिव कल्याण स्वरूप हैं। इसलिए इस सर्वव्यापक परमेश्वर को ध्यान योग की साधना करनेवाला गुरुमुख साधक जिस समय जिस स्थान में अर्थात् हृदय मन्दिर में उसे प्रत्यक्ष करना चाहे उसी समय वह महान—से—महान और अणु—से—अणु दिव्य स्वरूप में प्रत्यक्ष हो सकता है।

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः।।

(श्वेता० अ० ३ मंत्र ११)

अर्थ—वह भगवान् सब ओर से मुख, सिर और ग्रीवावाला है। वह समस्त प्राणियों के हृदय रूपी गुफा में निवास करता है तथा सर्वव्यापी है। इसलिए वह कल्याण स्वरूप परमेश्वर सब जगह पहुँचा हुआ है।।१।। इसी अध्याय के मंत्र १६ में भी इसी विषय पर लिखा हुआ है।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।

(श्वेता० अ०३ मंत्र १६)

अर्थ—वह परम पुरुष परमात्मा सब जगह हाथ पैरवाला, सब जगह आँख, सिर और मुखवाला तथा सब जगह कानोंवाला है। वही ब्रह्माण्ड में सबको सब ओर से घेर कर स्थित है।।१६।।

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।
हृदा मन्वीशो मनसाभिक्लृप्तो
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।।

(श्वेता० अ०३ मंत्र १३)

अर्थ—यह अंगुष्ठमात्र परिमाणवाला अन्तर्यामी परम पुरुष (पुरुषोत्तम) सदैव ही मनुष्यों के हृदय में सम्यक प्रकार से स्थित है तथा मन का स्वामी है तथा निर्मल हृदय और विशुद्ध मन से ध्यान में लाया हुआ प्रत्यक्ष होता है। जो इस परब्रह्म परमेश्वर को जान लेते हैं वे अमर हो जाते हैं। श्वेता० मंत्र० १३।।

नवद्वारे पुरे देही हूँ सो लेलायते बहिः।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च।।

(श्वेता० अ०३ मंत्र १८)

अर्थ—सम्पूर्ण स्थावर और जंगम जगत् को वश में रखनेवाला (हंसा) वह आकाशमय परमेश्वर नव द्वारवाले शरीर रूपी नगर में अन्तर्यामी रूप से

हृदय में स्थित है तथा वही ब्रह्म जगत् में भी लीला कर रहा है। श्वेता० अ०३ मंत्र १८।।

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा
गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्।।

(श्वेता० अ०३ मंत्र २०)

अर्थ—(वह) सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म तथा महान् से भी अति महान् परमात्मा इस जीव की हृदय रूपी गुफा में छिपा हुआ है। सब की रचना करनेवाले परमेश्वर की कृपा से जो मनुष्य उस संकल्प रहित परमेश्वर को और उनकी महिमा को देख लेता है, वह सर्व प्रकार के दुःखों से रहित हो जाता है। श्वेता० अ०३ मंत्र २०।।

इसलिए परमेश्वर के जिज्ञासु को परमेश्वर के दर्शन के लिए अपना हृदय रूपी मन्दिर छोड़कर अन्य स्थान में कदापि नहीं जाना चाहिए। सर्व प्रकार से दृढ़तापूर्वक अपने शरीर के अन्दर त्रिकुटी, दसवें द्वार आदि स्थानों में नित नियम और श्रद्धा प्रेम से ध्यान योग का अभ्यास करने से परमेश्वर का ज्योतिर्मय स्वरूप प्रत्यक्ष हो जाता है, क्योंकि परमेश्वर विशेष रूप से हृदय में ही विराजमान है। जैसा कि श्वेताश्वतरोपनिषद् के अध्याय ४ के मंत्र १४ में है—

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।।

(श्वेता० अ०४ मंत्र १४)

अर्थ—जो परमेश्वर सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म है वह मनुष्य के हृदय गुहा रूप गुह्य स्थान के भीतर स्थित है, वहीं अखिल विश्व की रचना करनेवाला है, वही अनेक रूप धारण करनेवाला है।।१४।।

एषदेवो विश्वकर्मा महात्मा सदा
जनानां हृदये संनिविष्टः।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो व
एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ।।

(श्वेता० अ०४ मंत्र १७)

अर्थ—यह जगत् कर्ता महात्मा परम देव परमेश्वर सर्वदा सब मनुष्यों के हृदय में सम्यक प्रकार से स्थित है। हृदय से, बुद्धि से और मन से ध्यान में लाने पर प्रत्यक्ष होता है। जो साधक इस रहस्य को जान लेते हैं वे अमृतस्वरूप हो जाते हैं। यह श्वेताश्वतरोपनिषद् अध्याय ४ का मंत्र २०वाँ है।

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा हृदिस्थ मनसा य
एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति।।

(श्वेता०अ०४मंत्र२०)

अर्थ—इस परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप दृष्टि के सामने नहीं ठहरता। इस परमात्मा को कोई भी आँखों से नहीं देख सकता। जो साधक जन हृदय में स्थित अन्तर्यामी इस परमेश्वर को भक्तियुक्त हृदय से तथा निर्मल मन के द्वारा जान लेते हैं वे अमृत स्वरूप (अमर) हो जाते हैं।।२०।।

एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं
बीजं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां
सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।।

(श्वेता०अ०६मंत्र १२)

अर्थ—वास्तव में जो अकेला ही बहुत से अक्रिय जीवों का शासक है और एक प्रकृति रूप बीज को अनेक रूपों में परिणत कर देता है उस हृदय स्थित परमेश्वर को जो धीर पुरुष निरन्तर देखते रहते हैं, उन्हीं को सदा रहनेवाला परमानन्द प्राप्त होता है, दूसरों को नहीं। श्वेताश्वतरोपनिषद् अध्याय ६ मंत्र १२।।

*

चक्रवर्ती राजा से सौ गुणा सुखी एक रागी, रागी से सौ गुणा सुखी एक गंधर्व, गंधर्व से सौ गुणा सुखी एक देवता, देवता से सौ गुणी सुखी इन्द्र और इन्द्र के सुख का सौ गुणा सुख एक भक्त को होता है। जिस प्रकार मदारी के जम्बूरे पर उसके मंत्र का असर नहीं होता उसी प्रकार भगवान के भक्त पर माया का असर नहीं होता। नट सेवकहि न व्यापे माया। — स्वामी परम!

अमृत प्रसाद :–

गुरु आज्ञा माने सोइ साधू

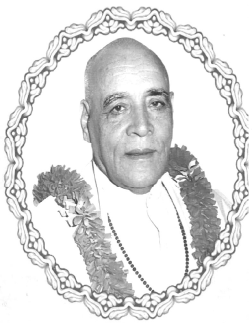

प्रातः स्मरणरीय पूज्य गुरुदेव श्री श्री १००८ अनन्तश्री विभूषित स्वामी परम ज्ञानानन्दपुरीजी महाराज का यह प्रवचन मोहनियां, रोहतास, बिहार में दिनांक ०५–०३–१९७५ को दिया गया था। ''मानव जीवन के चार पुरुषार्थ निश्चित किए गए हैं–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । इनमें अंतिम और सर्वोपरि पुरुषार्थ मोक्ष है। इसी की प्राप्ति के ज्ञान है क्या ? क्या बहुत–सी किताबें पढ़ लेना, अनेक डिग्रियाँ हासिल कर लेना ज्ञान है? नहीं, यह तो भौतिक ज्ञान है जिससे मात्र भौतिक पदार्थों की प्राप्ति की जा सकती है। ज्ञान का अर्थ होता है जानना। किसे जानना ? उस आत्मा को, उस ईश्वर को, उस सत्य को जानना ही वास्तविक ज्ञान है। इसकी व्याख्या तो बड़ी लम्बी हो जाएगी। अभी इतना ही समझ लो कि आत्मा, ईश्वर और सत्य उपाधि के भेद से ही पृथक–पृथक् नजर आते हैं। असल में ये सभी एक ही चैतन्य सत्ता के अलग–अलग नाम हैं। अन्तःकरण से अविछिन्न जो चेतन सत्ता है उसे जीव कहते हैं और अन्तःकरणवशिष्ट चेतन सत्ता ही आत्मा है। –सम्पादक!

आत्म कल्याण की जिज्ञासा को लेकर आये हुए सज्जनों!

बोलो हरि ओम्! हरि ओम्!! हरि ओम्!!!

सत्संग दो तरह का होता है– एक इबादत के रूप में, दूसरा भजन–कीर्तन के रूप में। महात्मा ने यहाँ आप लोगों को कई मार्मिक भजन सुनाए। अगर इनमें से एक का भी मनन करो तो वही तुम्हारे कल्याण के लिए काफी होगा। महापुरुषों ने कहा है–

आधी साखि कबीर की कोटि ग्रंथ का ज्ञान।
नाम सत्य जग झूठ है सुरत शब्द पहचान।।

अर्थात् अनेक ग्रंथों को पढ़ जाने से जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे आधी तुक में ही जाना जा सकता है। वह यह कि भगवान् का नाम सत्य है और जगत झूठा है। तुम इतना ही समझ लो तो कल्याण हो जाए। देखो, गुरु और शास्त्र की बातों को पूर्ण रूप से मनन करने के बाद आदमी को विवेक होता है। विवेक है क्या चीज ? सत्य को सत्य और झूठ को झूठ समझना विवेक है। जिसकी भावना इतनी दृढ़ बन गई, वह विवेकी कहा जाने लगा। कहने को तो सारे लोग कहते चलते हैं कि दुनिया झूठी है। मगर इस असलियत को जान लेने के बाद तो दुनिया से प्रेम नहीं होना चाहिए न ? मिथ्या चीज से कोई प्रेम करता है भला ? अगर हम दुनिया को चाहते हैं, उससे प्रेम करते हैं तो इसका मतलब यह हुआ कि हम दुनिया को सत्य समझते हैं। इसीलिए तो इसमें हमारी आसक्ति हो जाती है। आसक्ति होने पर तो बंधन होगा ही। अगर मुक्ति ऐसी चीज होती कि किसी के द्वारा दे दी जाती तो वह सबको करा दी गई होती। मुक्ति तो तुम्हें स्वयं अर्जित करनी है, क्योकि अपने बन्धन के कारण तुम खुद हो। रोटी जब खुद खाओगे तो पेट भरेगा। रोटी कोई खाए और पेट किसी का भरे, ऐसा नहीं हो सकता। तुम्हारा पेट तुम्हारे रोटी खाने से ही भर सकता है।

मानव जीवन के चार पुरुषार्थ निश्चित किए गए हैं–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । इनमें अंतिम और सर्वोपरि पुरुषार्थं मोक्ष है। इसी की प्राप्ति के ज्ञान है क्या ? क्या बहुत–सी किताबें पढ़ लेना, अनेक डिग्रियाँ हासिल कर लेना ज्ञान है? नहीं, यह तो भौतिक ज्ञान है जिससे मात्र भौतिक पदार्थों की प्राप्ति की जा सकती है। ज्ञान का अर्थ होता है जानना। किसे जानना ? उस आत्मा को, उस ईश्वर को, उस सत्य को जानना ही वास्तविक ज्ञान है। इसकी व्याख्या तो बड़ी लम्बी हो जाएगी। अभी इतना ही समझ लो कि आत्मा, ईश्वर और सत्य उपाधि के भेद से ही पृथक्–पृथक् नजर आते हैं। असल में ये सभी

एक ही चैतन्य सत्ता के अलग–अलग नाम हैं। अन्तःकरण से अविछिन्न जो चेतन सत्ता है उसे जीव कहते हैं और अन्तःकरणवशिष्ट चेतन सत्ता ही आत्मा है। माया से अविच्छिन्न चेतन सत्ता का ईश्वर तथा मायावशिष्ट चेतन सत्ता को ब्रह्म कहते हैं। इसकी अनुभूति गुरुजनों की कृपा से ही होती है।

हमारा देश जब तक गुरुजनों के प्रति श्रद्धालु था, गुरु परम्परा द्वारा निर्दिष्ट रास्ते पर चलता आया था, तब तक वह विश्व का गुरु बना हुआ था। संसार का सिरमौर था। जब से हमने अपने महान गुरुओं की कद्र करना छोड़ दिया तब से हमारा पतन शुरू हो गया। गुरु के नाम पर बहुत से ढोंगी लोग पैदा हो गए जिसके चलते लोगों की आस्था गुरुजनों में नहीं रही। कहा है–

साधू मेरे सब बड़े अपनी–अपनी ठौर।
शब्द विवेकी पारखी मेरे सिर का मौर।।

साधु कहते किसे हैं? **'परकार्यं साध्यते येन स साधुः'**, अर्थात् जिससे दूसरों का कार्य सधे वह साधु होता है। साधु शब्द को उलट देने से धूसा हो जाता है, जिसका अर्थ होता है कम्बल। कम्बल को चाहे बिछा लो या ओढ़ लो, धूल में बिछा लो या पलंग पर, उसका कुछ नहीं बिगड़ता। इसी प्रकार साधु को अपना अहंकार इस प्रकार मिटा देना चाहिए कि उसे न किसी बात से हर्ष हो और न शोक। हर हालत में उसे खुश रहना चाहिए। साधु की दूसरी परिभाषायें भी दी गई हैं–

गुरु आज्ञा माने सोइ साधू।
गुरु आज्ञा पद भेद अगाधू।।

जो दृढ़तापूर्वक अपने गुरु की आज्ञा मानता है वही साधु है, जो नहीं मानता वह ढोंगी होता है। बाबा नानक एक बार विचरण करते हुए किसी जंगल में आ गए। एक जगह लोगों ने उनसे कहा, 'महाराज, आप उधर से न जायें, वहाँ एक बड़ा जालिम डाकू रहता है। जो कोई भी उधर जाता है, उसे वह कत्ल कर देता है।' बाबा ने किसी के कहने पर कान नहीं दिया। वे चलते ही गए। जंगल के उस भाग में जो चोर रहता था उसका नाम था धुनिया। बाबा के वहाँ पहुँचने के पहले ही वह किसी राही की ताक में बैठा था। सामने बाबा को देखकर उसने दण्डवत किया और अपने को उनका चेला बताते हुए उन्हें अपने घर चल कर उसे पवित्र कर देने के लिए अनुनय–विनय करने लगा। उसके मन में यह ख्याल था कि वह उन्हें घर ले जाकर जहर दे देगा और उनका सारा माल लूट लेगा। अपने सरल स्वभाव के कारण बाबा उसके साथ उसके घर चले गए। घर पर धुनिया ने बाबा को खिलाने के लिए रोटी बनाई। बाबा के साथ उनके दो शिष्य और थे–बाला और मरदाना। धुनिया ने दो–दो रोटियाँ उनमें से प्रत्येक को दीं। रोटियों में पहले से ही जहर मिला दिया गया था। बाबा ने चेलों से कहा, 'मुझे आज बड़ी तेज भूख लगी है, इसलिए तुम दोनों अपने हिस्से की रोटियाँ मुझे ही दे दो।' ऐसा कहा गया है कि आदमी को अपने माता–पिता और गुरु की बातों में कोई तर्क नहीं करना चाहिए। वे दोनों पक्के चेले तो थे ही। अपने हिस्से की रोटियाँ उन्होंने झट बाबा के आगे बढ़ा दी। बाबा बेझिझक छहों रोटियाँ खा गए। चेले तो पहले ही बेबाक बच गये थे। इधर डाकू ताक में ही रह गया कि बाबा अब मरे, तब मरे। किन्तु बाबा जैसे के तैसे बैठे रह गए। उन्हें कुछ नहीं हुआ। धुनिया ने चकित होकर अपने मन में सोचा कि यह तो बड़ा गड़बड़ हो गया, बाबा सारा विष पचा गया। यह अवश्य ही कोई बड़ी हस्ती है। अगर इसपर मेरा भेद खुल जाए तो यह मेरा ही बेड़ा गरक कर देगा। अब वह खुल गया और कहने लगा, 'बाबाजी, मुझे माफ कर दें।' बाबा बोले, 'भगतजी, तुमने तो मेरी बड़ी सेवा की। भूख लगी थी तो रोटियाँ खिलाई। इसमें गलती क्या हुई ?' बोला, 'मैंने जो सेवा की उसे तो मैं ही जानता हूँ।' बाबा पूछने लगे, 'बताओ, आखिर हुआ क्या?' बोला, 'पहले मुझे माफ कर दें।' बाबा ने कहा, 'जाओ, माफ कर दिया।' इसके बाद धुनिया ने रोटी में जहर मिलाने का सारा किस्सा बाबा के सामने बयान कर दिया । उसने अपने जीवन भर के पापों तथा धोखाधड़ी के लिए बाबा से क्षमा

माँगी, उन्हें माफ कर देने के लिए आरजू–मिन्नत करने लगा। बोला, 'कृपा कर मेरे उद्धार का उपाय बता दें। मैं आपकी शरण में हूँ।' महाराज बोले, 'चलो, अब भी चेत गए तो ठीक ही है। अगर अब भी अपना सुधार कर लो तो बहुत है। मैं तुम्हें उपदेश और गुरुमंत्र दे देता हूँ।'

मन्त्र पाना तो बड़ा आसान है मगर उससे पहले जो नियम पालन करना पड़ता है वह उतना ही कठिन होता है। मजहबी झगड़े को लेकर सभी अपने. अपने मंत्र को बड़ा सिद्ध करना चाहते हैं। पण्डित कहता है कि गायत्री से बढ़कर कोई मंत्र नहीं होता। आर्यसमाजी ''ॐ'' को सर्वोपरि मंत्र मानते हैं। वैरागी के लिए 'राम' से बढ़कर कोई मंत्र नहीं। संन्यासी पंचाक्षरी को सबसे बड़ा मंत्र मानते हैं। बंगाली कहते हैं कि नवाक्षरी से बढ़कर कोई मंत्र नहीं होता, देवी मंत्र ही सर्वोच्च है। मतलब कि जो जिसे पूजता है उसका मंत्र सबसे बड़ा। तुम भी गुरु के पास आकर मंत्र लेते हो। तुम इसके पहले भी किताबों में बहुत सारे मंत्र पढ़ते आए हो। चार पैसे की किताबों में भी तुम्हें दुनिया भर के मंत्र लिखे मिल जाएँगे। लेकिन सचाई यह है कि उन मंत्रों से तुम्हारा काम नहीं बनने का है। तुम्हारे लिए वही मंत्र महत्त्वपूर्ण है जिसे तुम अपने गुरु से प्राप्त करते हो। क्योंकि केवल उसी मंत्र के पीछे गुरु का आशीर्वाद एवं उनकी दिव्य प्रेरणा के भाव भरे होते हैं।

गुरु नानकदेव धुनिया चोर से बोले, 'मंत्र के पहले जो नियम निभाने होते हैं, तुम्हें उन्हें मानना होगा। उन्हें मानकर चलने से तुम्हारा जमीर शुद्ध होगा। यदि नहीं मानोगे तो मंत्र का कोई असर नहीं होगा।' धुनिया बोला, 'हुक्म करें, अभी पूरा करूँगा।' बाबा ने कहा, 'तुम झूठ मत बोलना, किसी का नमक खाकर हरामखोरी न करना और चोरी मत करना।' वह सोचने लगा, 'उम्र भर तो चोरी करता रहा, अब उसके बिना काम कैसे चलेगा ?' कहा, 'गुरुजी, और बात तो ठीक है मगर चोरी न करनेवाली बातें गड़बड़ है।' बाबा बोले, 'अच्छा, पहली दो बातें तो मानोगे ?' कहा, 'हाँ, इन्हें जरूर मानूँगा।' बाबा ने कहा, 'चोरी करनी हो तो बड़े–बड़े सेठ–साहूकारों के घर डाके डालना, बेच्चारे गरीबों का धन मत चुराना। बड़ों के घर एक बार ही डाका डालने से काफी माल मिल जाएगा और दस–बीस साल की छुट्टी हो जाएगी।'

धुनिया को भी बाबा की बात जँच गई। एक दिन वह किसी राजा के यहाँ डाका डालने चला। घोड़े पर सवार था। शस्त्र को छिपा रखा था। राज–भवन के मुख्य द्वार पर पचासों द्वारपाल खड़े थे। पहरा पड़ रहा था। इधर ये जनाव घोड़े पर सवार होकर लाट साहब बने चोरी करने जा रहे थे। पहरेदारों ने पूछा, 'आप कौन है?' झूठ तो बोलता नहीं था। बताया, 'चोर'। उन लोगों ने सोचा कि चोर के पास तो हथियार होता है जो इसके पास नहीं है। फिर कोई चोर अपने को चोर नहीं कहता। यह तो घोड़े पर चढ़ा राजा का कोई रिश्तेदार लगता है। यही सोचकर उन लोगों ने उसे भीतर जाने दिया। धुनिया सीधे राजभवन में घुसकर जो कुछ सामान हाथ लगा, उसे लेकर बाहर चल पड़ा। मुख्य द्वार पर द्वारपालों ने सोचा कि राजा साहब ने भेंट–उपहार में उसे वे सामान दिए होंगे। इसीलिए उसे सामानों के साथ देखकर भी उन लोगों ने उसे तनिक नहीं टोका। धुनिया सामान लेकर अपने घर आया। सामानों का गट्ठर खोला तो उसमें एक बरतन मिला। ढक्कन हटाकर देखा तो उसमें कोई चीज रखी थी। उसने उठाकर एक चुटकी मुँह में डाल लिया। अब पता चला कि वह नमकीन जलपान था। सोचा, यह तो गजब हो गया। गुरुजी ने नमकहरामी करने से मना किया था और मैंने नमक खा लिया। अगर राजा को धोखा दूँ तो गुरु की आज्ञा टली, सारा धर्म नष्ट हुआ। वह रात भर सोचता रहा। अन्त में उसने निष्कर्ष निकाला कि सामान लौटा देना चाहिए ।

दूसरी सुबह सामान घोड़े पर रखा और वह राजभवन को चल पड़ा। वहाँ राजभवन में पहरेदारों की पिटाई हो रही थी। पूछताछ हो रही थी कि पहरा रहते माल चोरी कैसे चला गया। इसी माहौल में धुनिया सामान लेकर हाजिर हो गया।

बोला, 'राजन, आप इन गरीबों को सजा न दें। आपका माल सामने है, इसे ले लें।' राजा अवाक् ! पूछा, 'क्या बात है ?' धुनिया ने सच–सच बता दिया, क्योंकि झूठ तो बोलना नहीं था। राजा सोचने लगा कि यह अजीब चोर है। चोरी करके ले भी गया और फिर सामान वापस कर रहा है। चोर ने स्पष्ट कर दिया कि चोरी के लिए तो गुरुजी की आज्ञा थी मगर झूठ बोलने और नमकहरामी के लिए नहीं थी। अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा ने कहा, 'वाह, तू तो अपने गुरु का अनन्य भक्त है, तुझे कोई सजा नहीं दी जाएगी।' धुनिया को बख्श दिया गया।

तो, मेरे इस मिसाल का यह मतलब है कि गुरु–वचनों को श्रद्धापूर्वक मान लेने से सर्वत्र मंगल होता है। गुरु से मंत्र लेने का यह आशय है कि दूसरे सारे मजहबों और सम्प्रदायों की तरह–तरह की बातों से अलग होकर एकमात्र गुरु प्रदत्त मंत्र का अभ्यास करना। मजहब अनेक हैं। सबकी बातें सुन–सुन कर जीव की बुद्धि भ्रमित हो जाती है। क्या ठीक है और क्या गलत, इसका निर्णय नहीं हो पाता। दुनिया की सारी फिलासफियों की बात छोड़ भी दी जाए तो धार्मिक सम्प्रदायों के अलग–अलग तर्क सुनकर माथा चकरा जाता है। मुसलमान कुछ कहते हैं तो बौद्ध कुछ और। हमारे हिन्दुओं में ही पचासों मत और सम्प्रदाय है। इनमें से प्रत्येक अलग–अलग ढंग से अपना तर्क पेश करता है। अन्ततोगत्वा इन झगड़ों से बचने के लिए तुम्हें गुरु की शरण में आना होता है। गुरु अपने अनुभव के अनुसार तुम्हारे लिए उपयुक्त साधन निर्दिष्ट करता है। लेक्चर तो तुमने बहुत सुने होंगे। ऐसे लेक्चरों को सुनकर तुम वाह–वाह भी करते आए होगे, मगर पल्ले कुछ नहीं पड़ा होगा। वक्त का जो गुरु होगा वही तुम्हें ऐसी बात बताएगा जो तुम्हारे योग्य होगी और जिसे तुम कर सकोगे। वह तुम्हें व्यर्थ के वाग्जाल में हरगिज नहीं फँसाएगा। अगर मैं तुम्हें कह दूँ कि सौ अश्वमेध यहाँ कर लेने से तुम इन्द्र हो जाओगे तो क्या ऐसा यज्ञ करना तुम्हारे वश की बात है ? तब मेरा ऐसा उपदेश देना उचित नहीं हुआ न ! यदि मैं तुम्हें यह कहूँ कि तुम ब्राह्ममुहूर्त में उठ कर भजन करो तो शायद मेरा यह उपदेश भी तुम्हारे अनुकूल नहीं पड़ेगा। तुम्हें तो गाड़ी लेकर रात के दो बजे कहीं बाहर निकलना है। सफर में गाड़ी की स्टीयरिंग पर हाथ रखे आँखें बन्द करके भजन करने लगो तो दुर्घटना हो जा सकती है। ऐसे भजन करने से तो बेड़ा ही पार हो जाए। तो, वक्त का महापुरुष तुम्हारी परिस्थितियों को मद्दे नजर रखते हुए तुम्हें ऐसा मार्ग बताएगा जिसपर तुम आसानी से चल सको। उसी पर चलने से तुम्हारे लोक और परलोक दोनों बन पाएँगे। अगर अभी तुम्हें कोई रोग हो गया हो तो तुम्हारी चिकित्सा के लिए लुकमान और धन्वन्तरि तो आएँगे नहीं, तुम्हारा इलाज तो वक्त का डॉक्टर ही करेगा। यदि वह डॉक्टर ज्यादा नहीं भी जानता तो उसी का इलाज तुम्हारे लिए उचित होगा। हाँ, एक बात हो सकती है कि जो नुस्खा धन्वन्तरि और लुकमान देते थे वहीं वह तुम्हें भी दे दे। इस वास्ते तुम्हें वक्त के गुरु के पास अपने कल्याण के लिए जाना ही होगा। गुरु तुममें ज्ञान की बुनियाद डालता है। अगर तुम उसकी बताई हुई बातों पर मनन करो और उन्हें चरितार्थ करो तो तुम्हारा अभी उद्धार हो जाए। उपदेश देते वक्त जो कुछ तुम्हें बताया गया, यदि उसका मनन करते हुए वैसा ही आचरण करना शुरू कर दो तो तुम्हारा क्ल्याण रजिस्टर्ड। कोई उसे रोक नहीं सकता। **'जय गुरु, आशीर्वाद'!**

जब तक इंसान अपना स्वामित्व कायम रखता है तबतक भक्ति में आनन्द नहीं आता। ममत्व को मिटाने के लिए ही भक्ति की जाती है। मैं–मेरा ही जीव का बन्धन है और तू–तेरा ही भक्ति का मूल।

भगवान को पाने कहीं जाना नहीं है। उसे ढूँढ़ना ही गुम करना है। मैं अपने–आपको दुनिया भर में खोजता फिरूँ तो क्या प्रलय तक भी खोज पाऊँगा ? अपने–आपको गुम कर देना ही प्रभु को पा लेना है। उसकी भक्ति में इतना बेसुध हो जाये कि अपने–आप को भी भूल जाये। बस, बात बन जायेगी।

– स्वामी परम!

प्रवचन पीयूष :–

'सर्वस्व अर्पण से ही परमात्मा की प्राप्ति संभव'

प्रस्तुति– स्वामी अखण्डानन्दपुरीजी

पूज्यपाद ब्रह्मलीन स्वामी भास्करानन्दपुरीजी महाराज के द्वारा यह प्रवचन धनगाई, बिहार में दिनांक २८.०३.१०८६ दिया गया था। इस प्रवचन में श्री स्वामीजी महाराज ने यह फरमाया–'सर्वस्व लेने का अधिकारी तो सिवाय परब्रह्म परेमश्वर के दूसरा कोई है ही नहीं। सर्वस्व का मतलब होता है, पाप–पुण्य, भला–बुरा, सब कुछ। ठीक उसी तरह हम सभी ने अपना सर्वस्व श्री गुरु महाराजजी को दे दिया और वचन भी किया, हे गुरु महाराज! मैं अपना तन–मन–धन सर्वस्व आपको भेंट चढ़ा रहा हूँ। ठीक बलि की ही भांति आपने अपना सर्वस्व अर्पण श्री गुरु महाराज जी को किया फिर भी आपको बलि की तरह परमात्मा का साक्षात्कार क्यों नहीं होता है? बात यह है–आपने मात्र जुबान से दिया है, अमल नहीं किया है।' – सम्पादक!

प्रभु के अनन्य प्रेमी भाइयों, और बहनों!

सर्व प्रथम मैं आप सभी को श्री गुरु दरबार की ओर से प्यार भरा शुभ आशीर्वाद देता हूँ। आपका मानव तन मे आना सफल हो, सेवा वन्दगी के द्वारा आप अपने लक्ष्य को प्राप्त करें, मेरी यही शुभ कामना है।

आप सभी को गुरु के वचनों पर पूर्ण विश्वास रखना चाहिए। संतजन कहते हैं– **''जो गुरु कहै सो कीजिए, हानि होय तो होने दीजिए।''** अपने भगवान के नाम को प्राप्त करने के लिये महान वस्तु का दान किया है। अरे, राजा बलि के पास जाकर भगवान ने तीन डेग पृथ्वी माँगी और उसने दे दी। वह भगत भाव का था, प्रह्लाद के खानदान का था, इन्द्रासन का अधिकारी था। इन्द्र नहीं चाहते थे कि वह इस पद को प्राप्त, इसलिये उसे पथ–च्युत करने के लिए कश्यप के घर में में जन्म लिये, वामन रूप में। राजा बलि का नियम था–**"जो मुझसे माँगेगा, वह मैं उसे दे दूंगा।"** वामन जी बलि के पास पहुँच कर याचना के शब्दों में बोले– राजन! मुझे कुटिया बनाने के लिए मात्र तीन डेग जमीन दे दो। वहीं पर बलि के गुरु शुक्राचार्य भी थे, वे सब रहस्य समझ रहे थे। उन्होंने कहा–राजन! साधु को मुँह लगवाना ठीक नहीं है। यह तीन डेग में तुम्हारा सब कुछ ले लेगा। बलि ने कहा–क्या यह सर्वस्व ले लेगा? अरे सर्वस्व लेने की शक्ति तो सिवाय परब्रह्म परमेश्वर के अतिरिक्त दूसरे में है ही नहीं। अस्तु मैं तब तो उन्हें अवश्य ही दूंगा। क्योंकि

बाजी लाऊँ राम से, जीतू तो मैं राम।
हारुं तो निज अहं को, जिससे पाऊ राम।।

अगर ये साधु हैं, तीन डेग पृथ्वी तो लेंगे तब भी मैं देकर अपने वचन का निर्वाह कर कृतार्थ होऊँगा। अगर ये तीन डेंग में सर्वस्व ले लेंगे तो सब में तो मैं भी हो जाऊँगा। इस तरह दोनों हाथों में लड्डू ही है। सर्वस्व लेने का अधिकारी तो सिवाय परब्रह्म परेमश्वर के दूसरा कोई है ही नहीं। सर्वस्व का मतलब होता है, पाप–पुण्य, भला–बुरा, सब कुछ। ठीक उसी तरह हम सभी ने अपना सर्वस्व श्री गुरु महाराजजी को दे दिया और वचन भी किया, हे गुरु महाराज! मैं अपना तन–मन–धन सर्वस्व आपको भेंट चढ़ा रहा हूँ। ठीक बलि की ही भांति आपने अपना सर्वस्व अर्पण श्री गुरु महाराज जी को किया फिर भी आपको बलि की तरह परमात्मा का साक्षात्कार क्यों नहीं होता है? बात यह है– आपने मात्र जुबान से दिया है, अमल नहीं किया है। कहा है–

कामी, क्रोधी, लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति वरण कुल खोय।।

जब आदमी देने में हिसाब लगाता है तो भगवान भी देने में हिसाब लगाते हैं। जो आदमी अभेद हो जाते हैं प्रभु से तो भगवान भी उसके लिए अभेद हो जाते हैं। भला जो यामी है–यानि जो इच्छा प्रधान है जो ख्वाहिशों का गुलाम है, उससे भक्ति क्या होगी? हाँ जो अपनी इच्छा को गुरु महाराज की इच्छा में समाहित कर दे यह भगत

होता है। **क्रोधि**— यानि इच्छा की नहीं पूर्ति होने पर क्रोध होता है और जिसे इच्छा ही नहीं भला उसे क्रोध कैसे होगा? उसकी इन्छा गुरु महाराज की इच्छा में समाहित हैं तो फिर क्रोध का प्रश्न ही कहाँ उठाता है। **लोभी**— जब हम लोभी भी न रहे तब भक्ति आयेगी। जो—जो भगत हुए अपनी इच्छाओं को इसी तरह दबाये, समाज में काफी कष्ट वे पाये। भला सेवरी को, मीरा को कम कष्ट दिया गया। सेवरी को शुद्र जाति का समझकर ऋषि लोग दण्डित करते थे, उसे सेवा से वंचित करते थे फिर भी वह सेवा से मुँह नहीं मोड़ती थी तब वह गुरुमुख बनी। और उस गुरुमुख का शीत प्रसाद पाने के लिये श्री राम भी उसके पास आये। इसलिए कहा जाता है—

अगर कुछ भक्ति चाहो तो मिटादो अपनी हस्ती को।
दाना खाक में मिलकर गुले गुलजार होता है।।

आप अपने धान, गेहूँ को अपने घर में रखे रहेंगे तो उसका विकास नहीं होगा। उसे जब खेत में डालेंगे तो यह सड़ जायेगा। उसमें से फिर अंकुर निकलेंगे और उससे काफी अन्न निकलेंगे। एक बार मैं अपने नौकर को बीज बुनने के लिये बीज देकर खेत में भेजा। वह बीज बचाकर चला आया। काफी दिनों के बाद जब मैं खेत देखने गया तो देखा बीज ठीक से जमा ही नहीं है। जब ठीक से पता लगाया तो पता चला कि वह बीज बचा कर लाया था। जब मैं उसे डाँटा तो उसने कहा— मालिक हमने सोचा बेकार ही सड़ जायेगा बचा लें कुछ। तब मैंने उसे समझाया अरे, जितना ही सड़ता है उतना ही तरता है। अतः जो अपना विकास चाहता है उसे सड़ने से डरना नहीं चाहिए।

याद रखें—ईश्वर संसार में सबसे आला वस्तु है, उस आले वस्तु को प्राप्त करने के लिये अपने अहं भाव को मिट्टी में नहीं मिलाया जायगा तब तक वह परमात्मा नहीं मिलेगा और यह भी याद रखें जो संत—महात्मा होते हैं वे अपनी सिद्धि नहीं दिखाते। जितने भी गुरु हुए हैं उन्होंने अपनी शक्ति का प्रदर्शन नहीं किया है। जो अपने शक्ति का प्रदर्शन नहीं करता है वही सुजान होता है। उसका दर्जा उंच्चकोटि के संतों में होता है और जो शक्ति का प्रदर्शन करता है, ऋद्धि—सिद्ध का सहारा लेता है, वह संत के दर्जे से नीचे आ जाता है।

तुलसीदास जी को औरंगजेब ने जेल में बंद कर दिया और कहा तुम अपनी शक्ति दिखलाओ। उन्होंने अपनी शक्ति नहीं दिखलाई, जेल के भीतर हो गये। जब उन्होंने हनुमान जी की प्रार्थना की तो बानरी सेना चारो तरफ से तोड़—फोड़ करने लगी। गोस्वामी जी अपनी कोई शक्ति नहीं दिखलाये। ये तो उनके इष्ट की कृपा हुई। आप भी अपने इष्ट के कृपा—पात्र बनें और गुरु की कृपा से अपना लोक और परलोक सुधारें, आपका मंगल हो, यही मेरी शुभकामना है। **'बोलें श्री गुरु भगवान की जय'!**

पत्रिका प्राप्ति हेतु सहयोग राशि

एक प्रति :
25.00 (पच्चीस रु0)
वार्षिक :
251.00 (दो सौ एक्यावन रु0)
त्रैवार्षिक :
751.00 (सात सौ एक्यावन रु0)
पंचवार्षिक :
1251.00(एक हजार दो सौ एक्यावन रु0)
दसवार्षिक :
2551.00(दो हजार पांच सौ एक्यावन रु0)
आजीवन :
5001.00 (पाँच हजार एक रु0)
संरक्षक :
7501.00 (सात हजार पाँच सौ एक रु0)
विशेष संरक्षक :
11111.00 (ग्यारह हजार एक सौ ग्यारह रु0)

नोट :— आजीवन सदस्य का नाम, पता, संरक्षक का फोटो, वायोडाटा तथा विशेष संरक्षक का फोटो, वायोडाटा एवं उनसे संबंधित विशेष परिचयात्मक विवरण पत्रिका में प्रकाशित किया जाएगा। पूर्व में सदस्यता प्राप्त आजीवन सदस्य, संरक्षक एवं विशेष संरक्षक पूर्व में भुगतान की गई राशि वर्द्धित दर से घटाकर शेष राशि का भुगतान कर अपनी सदस्यता अवश्य नवीनीकृत करा लें। सम्पर्कसूत्र—
7372000511, 7372000512, 7060862109, 9334319012, 9430930168, 8986373548

प्रवचन सुधा :—

हृदयस्थ परमात्मा की अनुभूति

प्रस्तुति— स्वामी प्रज्ञानन्दपुरीजी

पूज्यपाद महामण्डलेश्वर ब्रह्मलीन स्वामी केशवानन्दपुरी जी महाराज का यह प्रवचन दिनांक १४.११.१९८९ को मेकल कॉलनी, राँची, झारखण्ड में दिया गया था। श्री स्वामी जी महाराज ने अपने इस व्यख्यान में हृदयस्थ परमात्मा की अनुभूति गुरु कृपा से ही सम्भव है के सम्बन्ध में बताया है—'मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, यही चार विभाग हैं अन्तःकरण के। संतों ने प्रक्रिया निकाली कि स्थूल शरीर को सेवा में लगाओ, बुद्धि को आत्मा में लगा दो ताकि यह विचार करे कि नाम सत्य और जगत् झूठ है। बुद्धि जिसको सत्य कहे, मन को उसी में लगाया जाय। जब अर्द्धचेतन मन पूर्ण चेतन अवस्था में चला जाता है तब अहंकार को 'अहं ब्रह्मास्मि' का बोध होता है। इस प्रकार क्रम व्यवस्थित होता है। यही सिद्धावस्था है। — सम्पादक!

धर्मानुरागी सज्जनों!

सभी जीवों पर परमात्मा का समान अनुग्रह है। जैसे सूर्य का प्रकाश सर्वत्र समान पड़ता है—मिट्टी के ढेले पर, काष्ठ पर, जल पर और आतशी शीशे पर, परन्तु शीशा सूर्य की किरणों को केन्द्रित कर लेता है और अगर उसके नीचे, दूसरी तरफ कागज का टुकड़ा रखा जाय तो तत्काल जल उठता है। उसी प्रकार भगवान् की कृपा सब जीवों पर बराबर हो रही है, पर भक्तों और संतों के हृदय में उसकी अनुभूति होती है, उधर गन्दे हृदय वाले पापी जीवों में उसका प्रभाव कम दिखाई पड़ता है। भगवान कहते हैं:—

सब मोहि प्रिय सब मो उपजाए।
सब तें अधिक मनुज मोहि भाए।।
तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी।
तिन्ह महँ निगम धरम अनुसारी।।
तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ज्ञानी।
ग्यानिहुँ ते अति प्रिय बिग्यानी।।
तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा।
जेहिं गति मोरि न दूसरि आसा।।
पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं।
मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाही।।

सेवक उस आतशी शीशे की भाँति भगवान के प्रेम को अपने हृदय में धारण कर लेता है, इसलिए वह उनका परम प्यारा होता है।

सब घट मेरा साइयां सूना घट नहिं कोय।
बलिहारी वा घट की जा घट परगट होय।।

उस हृदय की बलिहारी है जिसमें प्रभु का प्रेम प्रकट होता है। हम उसी परमात्मा की सत्ता में जी रहे हैं। फर्क इतना ही है गाय के थन में दूध भरा रहता है पर वह दूध उसे पुष्टि नहीं प्रदान करता। वही दूध यदि पात्र में दूहकर उसे पिला दिया जाय तो गाय को फायदा होता है। प्रभु आपके ही अन्दर हैं, पर उसकी आपको प्रतीति नहीं होती। गुरु, कृपा करके आपको उसकी प्रतीति करा देते हैं। आपके अन्दर वह सत्य मौजूद है और गुरु उसे ही प्रकट करा देते हैं। बाहर से कुछ नहीं दिया जाता, बाहर से सिर्फ प्रेरणा मिलती है। उसकी प्राप्ति के अनेक रास्ते हैं। उन्हीं रास्तों को मजहब कहते हैं। सभी मजहब सत्य हैं. सिद्ध हैं। फर्क उनमें कुछ भी नहीं है। भोले—भाले, निष्छल भाव से आस्था—विश्वासपूर्वक किसी रास्ते को अपनाने से प्रभु को प्राप्त किया जा सकता है—

'भोले भाव रीझे रघुराई।'

चतुराई से वह नहीं रीझता। मजहबपरस्त लोग नासमझी से इसे झगड़े का रूप दे देते हैं। इससे सरलता नहीं रह पाती, हृदय की निर्मलता नहीं रहने पाती। वहाँ दुराग्रह आ जाता है और अर्थ का अनर्थ हो जाता है। मुरादाबाद के पास

आर्य समाज और सनातन धर्मियों का शास्त्रार्थ हो रहा था। वहां **'न तस्य मूर्तिः'** अर्थात् उस परमात्मा की मूर्ति नहीं होती! इसी पद पर विवाद हो रहा था। हफ्ता भर इसपर बहस होती रही। एक बूढ़ा मौलवी उनके बीच गया और कहा, ऐ पागलों सात दिन यदि खुदा की सच्चे दिल से इवादत करते तो वही प्रकट होकर इस भ्रम को दूर कर देता। क्यों बेकार वक्त बरबाद करते हो!'

हमने वाद–विवाद में, खींच–तान में अपनी विपुल ऊर्जा खर्च कर दी है। फल हुआ कि दिवालिया हो गए, आँखों की रोशनी जाने लगी, जबान और शरीर के सभी अवयव साथ छोड़ने लगे, मगर तृष्णा शान्त नहीं हुई, कुछ प्राप्त नहीं हुआ। दीये में तेल जब तक रहेगा तभी तक तो प्रकाश मिलेगा। उसके बाद रोशनी लुप्त हो जायेगी।

आजकल लोग भजन तो करते हैं, कथा–कीर्तन, माला–कण्ठी आदि क्रिया करते ही रहते हैं, फिर भी उन पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता, आत्मज्ञान का प्रकाश नहीं मिल पाता। ऐसा इसलिए होता है कि आत्मज्ञान प्राप्ति की एक विशिष्ट प्रक्रिया है जिसके मुताबिक नहीं होने से ऐसा होता है। इसके चार अंग हैं–

पहला– प्रणव–अजपा जाप, हम अन्दर इस ध्वनि को उठाते हैं।

दूसरा– अनहद नाद यह ऊपर वाले से सूक्ष्म है। पांच प्राणों के द्वारा चेतना का संचार हो रहा है। जिस प्रकार पावर हाउस से तीन सौ किलोमीटर से अधिक दूरी पर ट्रान्सफॉर्मर बनाने पड़ते हैं। आखिर तक पहुँचते–पहुँचते आवाज क्षीण हो जाती है, इसलिए फिर सबस्टेशन बनाने पड़ते हैं। यहाँ भी चैतन्य आत्मा से प्राणों का संचार हो रहा है। छहों चक्र ट्रान्सफॉर्मर हैं जो उस चैतन्य को सारे शरीर में जारी रखते हैं। वोल्टेज स्टेबिलाइजर की तरह धीरे–धीरे प्रणव का बोध होता है। चक्र–भेदन करना पड़ता है। हमारी गुरु–परम्परा सन्तमत की परमपरा है। इसमें कुछ आसानी है। इसमें गृहस्थ, इन्द्रिय निग्रह से हीन, यज्ञ–तप से वंचित पुरुष भी कामयाब हो सकता है। अपना काम–धंधा करते हुए भी इस साधना को किया जा सकता है। उठते–बैठते, सोते–जागते हर वक्त भजन हो सकता है। उसमें शुद्ध–अशुद्ध का कोई बखेड़ा नहीं। बूढे होने पर मरणासन्न अवस्था में तो कफ, बात, पित्त सभी विकृत हो जाते हैं। तब इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना का तारतम्य विच्छेद हो जाता है। उस वक्त तो स्नान–पूजा, पोथी–घण्टी–माला सब छूट जाते हैं। फिर नहा–धोकर, शुद्धाशुद्ध में फंसा हुआ धर्म उस दिन कैसे निभेगा! तब हमारे गुरुजनों ने इसका समाधान निकाला। उस दशा में भी चेतना तो बनी ही रहती है, इसलिए उन्होंने आन्तरिक अभ्यास की युक्ति बतायी।

एक दृष्टान्त के आधार पर इसे समझें। हम बाजार में अपने पिता के साथ गए। वहाँ पिता का हाथ हमसे छूट गया और हम भूल गये। क्या उपाय है मिलने का ? सर्वप्रथम उन्हें पुकारेंगे। आवाज लगाने के बाद कान लगायेंगे और जवाबी आवाज को सुनेंगे। आवाज आ जायेगी तो झट उसकी तरफ दौड़ेंगे।

हम अपने मालिक से इस मायामय अज्ञान की तूफान में बिछुड़ गए। नाम जप आवाज लगाने के बतौर है। जब इधर से पूरी आवाज लगाते हैं तब उधर की आवाज भी कान लगाकर सुनते हैं। वही है अनहद नाद। नादानुसंधान के पश्चात् हम ऊपर की ओर चल पड़ते हैं। वह शब्द उस आत्मा से स्फुरित होकर आता है। इस अभ्यास से अन्तःकरण आतशी शीशे की नाई हो जाता है।

दो प्रकार के संस्कार होते हैं। जैसे, गेहूँ को कंकड़ों से साफ करना है। उसमें से कंकड़ चुन लिये जायें, कंकड़ों से गेहूँ को अलग छान लिया जाये। अब दोनों में जिस किसी विधि से शुरू किया जाय। हमें अपने अन्तःकरण को दोषरहित बनाना है। तत्त्वरूप से उसमें मैल नहीं है। कार में एक टेपिड होती है जो इंजन के

सिलिण्डर में काम करती है। उसमें क्रमभेद होने से सिलिण्डर मिस करने लगता है। उसको ऐडजस्ट करना पड़ता है। गड़बड़ होने से क्रैंक टूट सकता है। उसी प्रकार अन्तःकरण का टेपिड चार चीजों से बना है और यह असंतुलित हो गया है। क्रम विच्छेद होने से उसमें संसार ही सत्य रूप में प्रतिभाषित होने लगा है। उसी क्रम को व्यवस्थित कर देने पर आत्मा का आभास होने लगेगा। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, यही चार विभाग हैं अन्तःकरण के। संतों ने प्रक्रिया निकाली कि स्थूल शरीर को सेवा में लगाओ, बुद्धि को आत्मा में लगा दो ताकि यह विचार करे कि नाम सत्य और जगत् झूठ है। बुद्धि जिसको सत्य कहे, मन को उसी में लगाया जाय। जब अर्द्धचेतन मन पूर्ण चेतन अवस्था में चला जाता है तब अहंकार को **'अहं ब्रह्मास्मि'** का बोध होता है। इस प्रकार क्रम व्यवस्थित होता है। यही सिद्धावस्था है। इस समय तो जो काम बुद्धि का है वह मन करता है, मन का काम चित्त करता है। सभी अव्यवस्थित हो गये हैं।

हमने ऊपर चार क्रियाओं की चर्चा की है। उनमें तीसरी है 'प्रकाश की खोज'। हम रात्रिकाल में रास्ता भूल गए हों। रात अंधेरी हो, कुछ आगे–पीछे सूझ नहीं रहा हो। उस हालत में ठिकाने पर कैसे पहुँच पायेंगे। चारों तरफ कान लगाकर कोई आवाज सुनेंगे। जिस ओर से आवाज आयेगी उधर की ओर उसके सहारे बढ़ते जायेंगे। दूसरा आधार प्रकाश का होगा। यदि कहीं दूर–दराज में कोई वर्त्ती, प्रकाश दिखाई देगा तो उसे भी पकड़कर कहीं ठिकाने तक पहुँच जायेंगे। ठीक इसी प्रकार दूसरा नादानुसंधान और तीसरा प्रकाशानुगमन का तरीका है। इसके बाद चौथा 'सगुण ध्यान' है। अपनी इष्टपूर्ति के सगुण दिव्य स्वरूप को हृदय में धारण करना। ये ही उपर्युक्त चार युक्तियाँ है आंतरिक साधना की। मगर इस साधना में गुरु की कृपा का ही सहारा है। दो प्रकार से जन्म होता है–बिन्दु से और नाद से। बिन्दु की सृष्टि तो माता–पिता के शरीर से कब की हो गयी। उसके बाद पिता की जाति, उसका गोत्र हमारी भी जाति और गोत्र हो गया। उनके धन, उनके नाते–रिश्ते सब हम हो गये। दूसरा जन्म नाद का होता है। वह गुरु द्वारा होता है। गुरु शब्द का पिता है। वह हमारे अन्दर उस ईश्वरीय शब्द को प्रकट कराता है। पिता के घर जन्म लेने की तरह गुरु से दीक्षा लेने से हम गुरु की विभुता से जुड़ जाते हैं। इसीलिए कहा गया कि शूद्र को वेद पढ़ना निषिद्ध है। शूद्र कौन है? **'जन्मना जायते शूद्र, संस्कारो हि द्विजोत्तम।'** जन्म से सभी शूद्र ही होते हैं। गुरु के उपदेश से हम द्विज बनते हैं, दुबारा जन्म ग्रहण करना पड़ता है। भगवान् कहते हैं–

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दानिस यस्य पर्णानि यस्यं वेद स वेदवित्।।

गुरु द्वारा उस अव्यय तत्त्व का उपदेश ले लेने के बाद ही जीव वेद का तात्पर्य समझता है। गुरु के शरीर से जन्म धारण करने के बाद हमारा अन्तःकरण व्यवस्थित हो जाता है और हम उस आत्मा की अनुभूति कर पाने में सक्षम होते हैं।

।। हरि ओऽम् तत्सत् ।।

पाठकीय सम्मति

महात्मा जी,

''जय सच्चिदानन्द''!

मेरी राय यह है कि पत्रिका में एक छोटा सा कॉलम ''विचारों के झरोखे से'' शीर्षक के लिए रखा जाना चाहिए, जिसमें इस प्रकार के विचार–विमर्श को स्थान दिया जाए। बस मैटर आधे पृष्ठ से अधिक का न हो। यदि उचित लगे तो इस विचार–विमर्श को पत्रिका में ''विचारों के झरोखे से'' शीर्षक के अन्तर्गत स्थापना करें।

यदि आज्ञा हो तो आधे पृष्ठ का इस कॉलम का मैटर हर महिने प्रेषित करुँगा।

सादर ''जय सच्चिदानन्द''!

एस.के.सिंह 'शिवम'
फरीदाबाद, दिल्ली एन.सी.आर.

सत्संग सुधा :–

मन को शुद्ध करवान ताई

प्रस्तुति– स्वामी पुण्यानन्दपुरीजी

पूज्यपाद ब्रह्मलीन स्वामी तुरीयानन्दपुरीजी महाराज ने इस आलेख में मन की शुद्धता पर दृष्टिपात् किया है। मन यदि शुद्ध हो तो अन्तःकरण स्वतः शुद्ध हो जाता है–'अजपा–जप में 'ऊँ' का संपुट है.जिससे वह और अधिक शक्तिशाली हो जाता है। पहले हम उसे साधारण रूप से ही जपना प्रारम्भ करते हैं परन्तु जब उस जप को करते–करते मन अन्तर्मुख हो जाता है तो परमात्मा की दिव्यानुभूति होती है फिर उस नाम में इतनी शक्ति है कि घोर पापी भी उतना पाप नहीं कर सकता।'' –सम्पादक!

अन्तःकरण के चारों भेद में पहला है मन! मन इन्द्रियों के द्वारा बाहर में भ्रमण करता है। वाह्य विषयों के सम्पर्क से वह गंदा हो जाता है। अतः उस गंदे मन को शुद्ध करने के लिए शास्त्रों और संतों ने विविध मार्ग बतलाये। गुरु महिमा में लिखा है–

'मन को शुद्ध करवान ताई।
प्रथमहिं अजपा जाप बताई'।।

शास्त्रीय मतानुसार जप चार प्रकार के होते हैं– **विधि यज्ञ**– जो विधिपूर्वक कर्मकाण्ड बाह्यरूप से किये जाते हैं। **जप यज्ञ**– जो धीरे–धीरे बोलकर किया जाता है। **उपांसु जप यज्ञ**– जो ओष्ठ के द्वारा किया जाता है और **मानस जप यज्ञ**– जो मन से किया जाता है। मनुस्मृति के अनुसार विधि यज्ञ से जप यज्ञ दस गुना है, उपांसु जप सौ गुना है तथा मन के भीतर मौन जप सहस्र गुना है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने भी अपने विभूति योग में **'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'** कहा। अर्थात् सारे यज्ञों में श्रेष्ठ यज्ञ यदि कोई है तो वह है जप यज्ञ। अब उन जपों में भी यदि कोई श्रेष्ठ जप है वह है अजपा–जाप अर्थात् मानस जप। भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते है– **''यदक्षरं वेद विदो वदन्ति, विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये।।''**

(गीता ८–११)

अर्थ– वेद के जानने वाले विद्वान् जिस सच्चिदानंद रूप परमपद को अविनाशी कहते हैं। आसक्तिरहित यत्नशील संन्यासी महात्मा जन जिसमें प्रवेश करते हैं और जिस परम पद को चाहने वाले ब्रह्मचारी लोग ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं. उस परम पद को मैं तेरे लिये संक्षेप में कहूँगा–

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मुध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योग धारणामं।।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्यवहारन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं, स याति परमां गतिम्।।

अर्थ– सब इन्द्रियों को रोककर तथा मन को हृदय देश में स्थिर करके, फिर उस जीते हुए मन के द्वारा प्राण को मस्तक में स्थापित करके परमात्म सम्बन्धी योग धारणा में स्थिर होकर जो पुरुष 'ऊँ' इस एक अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उनके अर्थ स्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्म का चिंतन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह पुरुष परमगति को प्राप्त होता है।

अजपा–जप में 'ऊँ' का संपुट है. जिससे वह और अधिक शक्तिशाली हो जाता है। पहले हम उसे साधारण रूप से ही जपना प्रारम्भ करते हैं परन्तु जब उस जप को करते–करते मन अन्तर्मुख हो जाता है तो परमात्मा की दिव्यानुभूति होती है फिर उस नाम में इतनी शक्ति है कि घोर पापी भी उतना पाप नहीं कर सकता। यथा–

नाम्नस्ति यावती शक्तिः पाप निर्हरणे हरेः।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः।।

(वृहत् धर्म पुराण)

नाम सदा नामी के अधीन होता है। वह नामी होता है सद्‌गुरु। जब संत सद्‌गुरु जीवों पर

दया करता है तो उसे पावन नाम को जो **'पावनं पावनानां'** है, शिष्य को देता है। शिष्य अपने गुरु प्रदत्त नाम को **'आंख, कान, मुंह बन्द कर, नाम निरंजन लेय।'** तो वह नाम उसके सारे अन्तर्मन के मैल को साफ कर देता है क्योंकि इन्द्रियों के द्वारा मन बाहर जाकर गन्दगी को भीतर लाता है। अशुद्ध तत्त्व को ग्रहण कर अन्तर्मन को गन्दा करता है। जब संत सद्गुरु दया करते हैं तो बाह्य इन्द्रियों को बन्द कराकर मानसिक जप के द्वारा मनन न कराकर चिन्तन कराते हैं। फिर उस नाम के चिन्तन के द्वारा अन्तर्मन शुद्ध हो जाता है। याद रखें मनन और चिन्तन में काफी अन्तर है। जब मन बाह्य इन्द्रियों के द्वारा बाहर भ्रमें और सोचे–विचारे वह है मनन और चिन्तन में बाह्य इन्द्रियों को रोककर अन्तर्मन से मात्र नाम जप किया जाय, प्रभु का, इष्ट का, चिन्तन किया जाय। नाम रूप लीला और धाम का मानसिक चिन्तन किया जाय, उसे चिन्तन कहते हैं। इस चिन्तन के द्वारा प्राप्त अवसाद का अन्त होता है। इस तरह अजपा–जाप मानसिक चिन्तन है, मनन नहीं। इसके द्वारा अन्तर्मन शुद्ध होता है। इसी से संतों ने कहा है–

'कोटि बहत्तर जाप जुबानी।
तुलै न कहैं सकल मुनि जानी।।'

क्योंकि हमारे शरीर के अन्दर बहत्तर कोटि छिद्र हैं। जब हम प्राण वायु लेते हैं तो उसके साथ वह नाम भी आता–जाता है। परिणाम यह होता है कि बहत्तर कोटि 'रोम–कूप' रूपी मुंह के द्वारा उस नाम का आना–जाना हुआ। इस तरह मुंह के द्वारा बहत्तर करोड़ बार नाम जपने का फल अजपा–जाप के द्वारा एक बार जपने में हो जाता है। ऐसे भी कहा जाता है–

अजपानाम् गायत्री मुनीनाम् मोक्षदायिनी।
यस्य स्मरण मात्रेण जीव पाय प्रभुच्यते।।

(गरुड़पुराण अध्याय–१८)

इस अजपा के द्वारा सामान्य जन की बात क्या, मुनिजन भी अन्ततोगत्वा इसी का आधार लेकर अपना कल्याण करते हैं और मन्त्र तो मुंह से बोला जा सकता है परन्तु यह तो मात्र स्मरण करने का है। रामायण में लिखा है–

जन्म–जन्म मुनि यतनु कराहीं।
अंत राम कहि आवत नाहीं।।

भला विद्यार्थी नित्य स्कूल जाय और परीक्षा के दिन न जाय तो वह फेल हो ही जायेगा। ठीक हम भी रोज किसी मन्त्र का जप करें परन्तु मरते वक्त तो मुंह बन्द हो जायेगा। परिणामस्वरूप हम मंत्र का जाप नहीं कर सकते। परन्तु अजपा–जाप जो स्मरण करने का है, श्वांस–श्वांस से करने का है, वह तो अन्त समय तक भी हो सकता है और जिस भावना में शरीर छूटेगा उसी की प्राप्ति होगी। **'अन्तमता सो गता'** सिद्धान्त के अनुसार यदि हम उस नाम के स्मरण में अपने प्राण को खोयेंगे तो उस परमात्मा के परमधाम को प्राप्त होंगे। कबीरदास जी ने ढोल पीटकर कहा–

'कहता हूँ कहे जात हूँ, कहे बजाऊं ढोल।
श्वांस–श्वांस में जात है तीन लोक का मोल।'

अस्तु,

श्वांस श्वांस से नामजप,श्वांस वृथा जन खोय।
ना जाने यहि श्वांस का, आना होय न होय।।
काल करो सो आज कर, आज करो सो अब।
पल में प्रलय होयेगा, बहुरि करोगे कब?

अतः अजपा जाप को नित्य नियम से करना चाहिये। यही मन को शुद्ध करेगा। आत्मानंद को प्राप्त करायेगा। **''जय सच्चिदानन्द!''** *

अगर शंकर बाबा ने तुम्हें बेटा नहीं दिया तो शंकर की पूजा छोड़कर हनुमानजी की करने लगे। अगर हनुमानजी ने तुम्हें मुकदमा नहीं जिता दिया तो उनका भी बायकाट। अब काली माई की पूजा शुरू हो गई। काली माई ने यदि तुम्हारा दुश्मन नहीं मार डाला तो उन्हें भी छोड़ दिया। इस तरह कभी शंकर, कभी हनुमान, कभी काली माई की पूजा करते–करते तुम्हें हासिल कुछ भी नहीं हो पाया। अनन्य निष्ठा से किसी एक से सम्बन्ध बनाने से बात बन जाती, क्योंकि फल तो निष्ठा को देना है, किसी भी भगवान को तो देना नहीं है। –स्वामी परम!

कथा लोक :—

त्याग की प्रतिमूर्ति पन्ना धाय

महाराणा प्रताप के बाबा थे महाराणा सांगा अपने युग के अप्रतिम योद्धा जिनके शरीर में अस्सी घाव लगे थे। भारत के दुर्भाग्य से वे बाबर सें हार गये और अन्त में उनकी मृत्यु हो गई। उनके बड़े पुत्र भोजराज, मीरा बाई के पति, का पहले ही निधन हो चुका था। अतः उसके बाद उनके पुत्र राजा विक्रमादित्य को मेवाड़ की गद्‌दी पर बैठाया गया। पर वह अत्यन्त अयोग्य निकला। इसी विक्रमादित्य ने मीरा बाई को जहर तक पिलाकर मारना चाहा था। इसके बाद महाराणा सांगा के सबसे छोटे पुत्र उदय सिंह को गद्दी पर बैठाया गया। उदय सिंह उस समय कुल छः वर्ष के ही थे। अतः उनके संरक्षक के रूप में बनवीर को नियुक्त किया गया। पर बनवीर के मन में एक दुष्ट योजना पैदा हुई— यदि विक्रमादित्य और उदय सिंह को मार दिया जाय, तो वही सदा के लिए राजा बन जयेगा।

उदय सिंह की माता महाराणा सांगा की बड़ी रानी कर्णवती का निधन हो चुका था। उसके बाद पन्ना नामक धाय उनका पालन—पोषण करती थी। उस रात सबसे पहले बनवीर ने सोते हुए राजकुमार विक्रमादित्य का काम तमाम किया और फिर नंगी तलवार लिये उदय सिंह की भी हत्या करने चला। जूठी पत्तल उठानेवाले एक आदमी ने बनवीर को विक्रमादित्य की हत्या करते देख लिया था। वह समझ गया कि अब उदय सिंह की ही बारी थी और उसने पन्ना को यह बात बता दी। अब एक धाय हत्यारे से उदय सिंह को बचाये तो कैसे? पन्ना के मन में उस समय ऐसा दिव्य विचार आया जिसने उदय सिंह के तो प्राण बचे ही, मानवता के इतिहास में त्याग—बलिदान का एक अनुपम उदाहरण जुड़ गया।

पन्ना के मन में उस समय एक ही विचार था किसी भी तरह उदय सिंह को बचाना है। सबसे पहले उसने सोते हुए उदय सिंह को एक टोकरी में रखकर उसी पत्तल उठानेवाले के हाथों एक निश्चित स्थान पर रवाना कर दिया। पर इससे तो उदय सिह बचेंगे नहीं, क्योंकि बनवीर उन्हें नहीं पाकर अपने लोगों से कहीं—न—कहीं से खोजकर मँगवाकर मार ही देगा। पर पन्ना ने एक उपाय सोच ही लिया। उसका भी उदय सिंह की ही उम्र का एक बच्चा था वह भी उस समय सो रहा था। उसने उसे ही उदय सिंह के पलंग पर सुलाकर उस पर चादर डाल दी और स्वयं एक ओर बैठ गई। उसी समय बनवीर आ धमका, तो उदय सिंह के बारे में पूछने पर उसने पलंग की ओर इशारा कर दिया। बनवीर ने तलवार के एक ही बार से बालक के दो टुकड़े कर दिये। इस तरह उदय सिंह बच गये। बाद में उनके ही पुत्र हुए हिन्दुत्व के सूर्य महाराणा प्रताप।

पन्ना धाय के महान् त्याग की गाथा युग—युग तक मानवता को प्रेरणा देती रहेगी। बास्तव में त्याग की सुगंध के बिना जीवन में स्वार्थ की दुर्गंध भर ही जाती है। धन्य हैं वे जो पन्ना धाय की तरह एक महान् उद्देश्य के लिए तन—मन—धन सब अर्पित कर देते हैं। *

यह संसार तो जेल है। इसमें प्रत्येक जीव अपने—अपने कर्मों का फल भोगने के लिए आया है। इसी में कोई धनी है तो कोई गरीब। जेल में जैसे ए क्लास, बी क्लास, सी क्लास के कैदी होते हैं वैसे ही यहाँ कोई उत्तम श्रेणी का कैदी है तो कोई मध्यम और निम्न श्रेणी का, परन्तु है सभी कैदी ही। फिर कैद में सुख कहाँ? सुख चाहते हो तो कैद से छूटने का उपाय करो। — स्वामी परम!

प्रार्थना का चमत्कार

एक बार मर्कन्डु मुनि के आश्रम पर भगवान आशुतोष पधारे। मुनिराज को कुछ उदास देखकर औघड़दानी भोलेनाथ ने उदासी का कारण पूछा, तो मुनिराज बोले भगवन्! एक लड़के के अभाव के कारण कभी–कभी चिन्तित हो जाता हूँ। शंकर भगवान बोले यदि पुत्र की प्राप्ति हो जाय? मुनिराज बोले– तब चिन्ता दूर हो जायेगी। भोले बाबा बोले पुत्र होगा लेकिन अल्पायु होगा। मुनिराज बोले प्रभु कोई हर्ज नहीं, पुत्र का कुछ ही काल के लिए मुँह तो देख लूँगा। शंकर भगवान बारह की आयु प्रदान कर चले गये। काल कर्म के अनुसार समय पर एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। वरदानी पुत्र दिन–दूना रात चौगुना एक विशेष प्रतिभा से विकसित होने लगा। बालक को देख मुनि की अभिलाषा तो पूरी हो गयी, लेकिन कालचक्र की गति के अनुसार पुत्र की आयु घटती देख कभी–कभी उदास भी हो जाया करते थे। तो बालक पिता की उदासी का कारण पूछ ही बैठता था। तो मुनिराज उसे टाल दिया करते थे। इसतरह जब बारह वर्ष की आयु समाप्ति में से ३–४ दिन शेष रहा तो एक दिन मुनिराज काफी चिन्तित हो गये। पिताश्री को चिन्ता की गहराई में देख बालक ने चिन्ता के कारण की जानकारी के लिए हठ मचा दिया।

आज मुनिराज ने हर्ष और विषाद के बीच पुत्र की प्राप्ति और आयु शेष के बारे में बता दिया। प्रतिभा सम्पन्न तेजस्वी बालक बोला– पिताश्री! **'कोई आज गया कोई कल गया कोई जावन हार तैयार खड़ा।'** इस जग की तो सदा यही रीति रही है तो फिर व्यर्थ की चिन्ता आप क्यों करते हैं। पुत्र की वाणी सुनकर काशी राजघाट शिव की नगरी चलने की आज्ञा प्रदान कर काशी राजघाट पहुँचे। बोले ! पुत्र आज जितने सारे लोग यहां गंगा स्नान करने आयें, उन सभी का चरण स्पर्श कर प्रणाम करना। सूर्य, चन्द्र तारे अपने धर्म से ना टल सके तो इंसान की मजाल क्या जो उनका क्रम बदल सके। दैव योग से उस दिन सप्तऋषि महाराज अपने लोक से गंगा स्नान करने शिवपुरी काशीजी पधारे थे। सबों की भांति पुत्र ने सप्तऋषि को प्रणाम किया तो सहज भाव से ऋषि राज ने चिरंजीवि कह कर शुभाशीष प्रदान किये। चिरंजीवि शब्द सुनते ही मर्कन्डु मुनि के आँखो से आँसू झरने लगे; यह देख सप्तऋषि ने आँसू का कारण पूछा तो "मार्कन्डे मुनि बोले कि यह इसलिए कि आज आप त्रिकालज्ञ की बाणी झूठी हो जायगी।

सप्तऋषि महाराज बोले–हमने तो भावातिरेक में इश्वरेच्छा से चिरंजीव का आशीष दिया है। आप इस रहस्य की जानकारी दें। मर्कन्डु मुनि ने पुत्र की प्राप्ति और अल्पायु की जानकारी देकर यह भी कहा प्रभो गणना के मुताबिक आयु समाप्ति में मात्र तीन ही दिन शेष है। यह जानकर ऋषिराज बोले– इस बालक को हमारे साथ लगा दें! अब इस निदान के लिए ब्रह्माजी के पास ब्रह्मलोक जाना है। ब्रह्मलोक जाकर कुछ दूरी पर रुककर प्रतिभाशाली बालक को ध्यानस्थ बैठे ब्रह्माजी को दिखा कर बोले; निर्भय होकर जाओ और मेरे ही जैसे सहज भाव से झट प्रणाम कर पट लौट आओ। बालक ने ज्यों ही ब्रह्माजी का चरण स्पर्श किया त्योंहि आयुष्मान भवः कह दिये। इसके उपरान्त छिपे सप्तऋषि पहुँचे और बोले ब्रह्माजी हमने अपनी बाणी झूठा होते देखा और आपकी भी बाणी झूठी होगी क्योंकि इसकी आयु मात्र दो ही दिन का है। ब्रह्माजी बोले– अब इसके लिए हम सभी मिलकर भगवान विष्णु की शरण में चलें। विष्णु लोक जाकर आप सभी छिपे रहे और बालक से बोले बेटा! विष्णु भगवान की ओर संकेत कर बोले– भगवन शयन कर रहे हैं श्री लक्ष्मीजी पैर दबा रही हैं निर्भय जाना और प्रणाम कर तेजी से लौट आना डरना नहीं। निर्भय बालक गया और ज्योंही विष्णु भगवान का चरण स्पर्श किया त्योंही दीर्घायु भवः बोल दिये। तदुपरान्त पीछे ऋषि

समेत ब्रह्माजी पधारे और बोले जो गलती अनायास हम सबों से हुई वही आप से भी हो गई। विष्णु बोले गलती कैसे क्या हो गई मुझसे बतायें। बोले इसकी आयु मात्र१ दिन बच रही है और हम आप सभी दीर्घायु भवः बोल दिये। विष्णु जी **'हरिइच्छा भावी बलवाना'** जानकर बोले अब हम सभी को भोलेनाथ त्रिपुरारी की शरण में जाना चाहिए वे ही इसके लिए सक्षम हैं। सभी कैलाश पहुँच कर एक स्थान में छिपकर साहसी बालक से शिला पर बैठे ध्यानस्थ भोलेबाबा की ओर संकेत कर बोले कि सदैव की भाँति निर्भय जाओं और किसी हालत में डरना नहीं और चरण स्पर्श कर प्रणाम बोलकर तेजी से चले आना। बालक ने निर्देशानुसार वैसा ही किया और भोले बाबा आयुष्मान भवः बोल दिये। पीछे–पीछे सप्तऋषि, ब्रह्मा, विष्णु सभी पधारे और अपने आने का कारण बताया कि हम सबों की भाँति आपसे भी गलती हो गयी। भोलेनाथ बोले– तब तो अब जाने भगवान। सबों के साथ–साथ बालक कैलाश के निकट एक शिवलिंग से अपने बाँहों से लिपट कर शिवस्रोत्र में ऐसा भावविभोर हो समाधि अवस्था में चला गया। इतने समय में आयु खतम होते देख काल आया और समाधिस्थ बालक से बोला– मैं काल हूँ, तुम्हें लेने आया हूँ। तुम्हारी आयु समाप्त हो चुकी है। भला समाधिस्थ जीव क्या जाने काल महाकाल को। आयु की समाप्ति पर अपना कर्त्तव्य समझ काल बलपूर्वक लिंग से जकड़े बालक की ओर ज्योंहिं बढ़ा कि शंकर भगवान क्रोधित हो काल पर त्रिशूल से झपटे। इतने में काल भयभीत हो कर बोला– प्रभु! इसमें हमारा क्या दोष है। मैं तो आपका अनुचर हूँ। आपकी आज्ञा पालन मेरा धर्म है। इसकी आयु बिल्कुल समाप्त है। आपको समझना चाहिए कि हमारे मर्कन्डु मुनि के पुत्र मार्कण्डेय को अपनी आयु की गणना के मुताबिक बारह साल की आयु प्रदान किए हैं। इस तरह 12 साल की आयुवाले मार्कण्डेय मुनी मात्र प्रणाम के प्रभाव से जीवित हैं। *

विचारों के झरोखे से.....

मन को सत्योन्मुखी बनाने का उत्तम, सर्वश्रेष्ठ व समस्त सम्प्रदायों में मान्य/प्रचलित साधन है भगवद् प्रार्थना और ध्यान! हर काम को भगवद् निमित्त करना कर्म के द्वारा भगवद् प्रार्थना व ध्यान है, जो कर्म को कर्मयोग बना देता है। घर के बच्चों की सेवा से लेकर झाड़ू–बुहारु, अतिथि सेवा, सबकुछ (कर्मो में बिना भेदभाव किये) भगवद् अर्पण व निष्काम भाव से करना ही सर्वश्रेष्ठ भगवद् प्रार्थना व ध्यान बन जाता है। कर्म से तो हम एक मिनट भी अलग नहीं रह सकते। अस्तु इस तरह हम हरक्षण परमात्मा से जुड़े रह सकते हैं। बहुत गहराई में उतरने के बाद यही बात शरणागति के रूप में परिवर्तित हो जाती है जिसे भगवान् श्री कृष्ण ने गीता के १८/६६ वें श्लोक में इस तरह कहा है–

''सर्व धर्म परित्यज्य मामेकं शरणं व्रजः।
अहं त्वांसर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।''

यहाँ **धर्म** का अर्थ है शास्त्रविहित कर्त्तव्य कर्म और **'शरणं व्रजः'** का भाव है परमात्मा निमित्त करना। मन को ठीक करना ही मनुष्य जन्म का हेतु है, क्योंकि मन ही भवबन्धन और भवमुक्ति दोनों का कारण है।

''मन एव हि मनुष्याणाम कारणं बन्ध मोक्षयो''।

तो प्रार्थना और ध्यान को कर्म से जोड़ देना ही कर्मयोग है जो भक्ति व भगवद् शरणागति तक पहुँच कर मनुष्य को जीवन–मुक्त बना देता है। जीवन मुक्त अर्थात् अंश का अंशी के साथ योग हो जाना एक हो जाना या असद् का सत्य में समाहित हो जाना। सीधे शब्दों में मन का आत्मानुकूल या आत्मसात बन जाना। शुभकामनाओं के साथ **''जय सच्चिदानन्द जी!''**

एस.के.सिंह 'शिवम्'
फरीदावाद, दिल्ली एन.सी.आर.

पुष्पांजलिः—

शुभकर्म करो प्रतिदिन निशि वासर

यज्ञ सुभाव प्रभुहिं सब वारी।
सद् अर्थ स्वधर्म व स्वार्थ यही,
प्रभु साथ रहें पल—पल त्रिपुरारी।।
संसार असद्—सद् मिश्रित यह,
सद्मार्ग चलो तजि मिथ्या असारी।
जेहि भांति रहे जग जानकीनाथ,
जनक आदि भूपति कृष्ण मुरारी।।१।।
सर्वप्रथम निज खान अरु पान,
को शुद्ध करो आत्मधर्म विचारी।
स्वाध्याय करो नित गीता—पुराण,
चरित्र सुजान सुभग धर्म धारी।।
मन शुद्ध—पवित्र करो यहि भांति,
भरोसा करो संविधान खरारी।
उपरति अनिवार्य विषय व विकार,
विवेक जगावन हेतु विचारी।।२।।
सुखभोग—सांसारिक कारण क्षोभ,
व लोभ है हेतु दु:सह दुखकारी।
पुनि लोभही हेतु है काम अरु क्रोध,
व मोह पतन भवरोगन्ह धारी।।
सुख भोगन्ह—मुक्ति मिले मन को,
यहि हेतु इसे परहित में लगाओ।
मन से सब कर्म करो निष्काम,
निमित्त प्रभु बनि आनन्द पाओ।।३।।
गुरुदीक्षा—समय तन, मन अरु धन,
गुरु—अर्पित कीन्ह निष्कामता धारी।
सब साधन श्रेष्ठ परम प्रभु—प्रदत्त,
फिर झूठे बनें हम हैं अहंकारी।।
कुछ भी तो नहीं अपना है यहां,
सब शक्ति व साधन देहिं मुरारी।
कुछ लेके नहीं आये थे यहां,
सबकुछ है प्रदत्त शिवम् त्रिपुरारी।।४।।
यह मोह है मिथ्या व माया प्रभाव,
संसार परीक्षास्थली अस जानो।
सुखभोग—संसार असार व नश्वर,
लोभ अरु मोह को दुश्मन मानो।।
प्रभु प्रदत्त संसाधन सब,
जगहित को विचारी।
शुचि सोच यही यह ही कर्म कौशल,
मन सात्विक श्रेष्ठ बने अविकारी।।५।।
मन ही है परीक्षक प्रतिनिधि प्रभु,
गुण ही हैं करम—गति प्रेरक हारे।
मन स्वर्ग—नरक अरु बन्धन हेतु,
व भक्ति व मुक्ति देवावन हारे।।
यह माया व काया को नश्वर रुप,
मन छुट्टा फिरै सब जाय नसाई।
यदि आत्मांचल प्रभु—शरिणी बनै,
भवबन्ध तबै तत्काल छुटाई।।६।।
धन—वैभव सब है दिया प्रभु का,
तन, मन, चेतन सब प्रभु—प्रभुताई।
अनुचित उपभोग है प्रभुसम्पति,
अरु लूट—खसोट व मान—बड़ाई।।
पशु—पक्षी गरीब अनाथ असहाय,
"शिवम्" उन्ह हेतु सहाय भलाई।
उपयोग करो साधन प्रभु दीन,
परमहित परहित लागै कमाई।।७।।
है साधन—भोग प्रवृत्ति पतन,
वर्चस्व वर त्याग को तुम अपनाओ।
है सत्य प्रभु बस एक जगत,
शरणागत बन मन प्रभु में लगावो।।
प्रभु—अर्पित सेवा निष्काम सुभाव,
कर्मयोगहिं क्षेत्र संन्यास कमावै।
मन लगि जाय जो परहित धर्म,
सत्संग स्वधर्म परमपद पावै।।८।।

शिवकुमार सिंह "शिवम्"
फरीदाबाद,दिल्ली—एनसीआर।

अस्पताल में नर्स बच्चों की सेवा करती है, पर कर्त्तव्य समझकर। अगर बच्चा मर जाये तो नर्स उसके लिए रोती नहीं और उसकी माँ रो—रोकर जान दे देती है। उसे बच्चे से मोह है। नर्स सेवा करती है, मोह नहीं करती वह अपनी नौकरी पूरी करती है। तुम भी नर्स की तरह संसार में रहो। मुनीम मालिक के घाटा—नफा की परवाह नहीं करता। वह व्यवसायी है। तुम भी मुनीम बनकर दुनिया की देख—रेख करो, घाटा—नफा भगवान् पर छोड़ो। — स्वामी परम!

दीपावली में लक्ष्मी–गणेश की पूजा क्यों होती है?

बहुत पुरानी बात है। दशहरा बीत चुका था, दीपावली समीप थी, तभी एक दिन कुछ युवक–युवतियों की झोला टाइप टोली किसी कॉलेज में आई! उन्होंने छात्रों से कुछ प्रश्न पूछे; किन्तु एक प्रश्न पर कॉलेज में सन्नाटा छा गया!

उन्होंने पूछा, "जब दीपावली भगवान राम के १४ वर्षो के वनवास से अयोध्या लौटने के उत्साह में मनाई जाती है, तो दीपावली पर "लक्ष्मी पूजन" क्यों होता है ? श्री राम की पूजा क्यों नही?"

प्रश्न पर सन्नाटा छा गया, क्यों कि उस समय कोई सोशल मीडिया तो था नहीं, स्मार्ट फोन भी नहीं थे! किसी को कुछ नहीं पता! तब, सन्नाटा चीरते हुए, एक हाथ प्रश्न का उत्तर देने हेतु ऊपर उठा! उसने बताया कि "दीपावली उत्सव दो युग "सतयुग" और "त्रेता युग" से जुड़ा हुआ है!" "सतयुग में समुद्र मंथन से माता लक्ष्मी उसी दिन यानि कार्तिक अमावसया के दिन प्रगट हुई थी! इसलिए "लक्ष्मी पूजन" होता है! भगवान श्री राम भी त्रेता युग मे इसी दिन अयोध्या लौटे थे! तो अयोध्या वासियों ने दीप जलाकर उनका स्वागत किया था! इसलिए इसका नाम दीपावली है! इसलिए इस पर्व के दो नाम हैं, "लक्ष्मी पूजन" जो सतयुग से जुड़ा है, और दूजा "दीपावली" जो त्रेता युग, प्रभु श्री राम और दीपोत्सव से जुड़ा है! उसके उत्तर के बाद थोड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा, क्योंकि किसी को भी उत्तर नहीं पता था! यहां तक कि प्रश्न पूछ रही टोली को भी नहीं! खैर कुछ देर बाद सभी ने खूब तालियां बजाई!

उसके बाद, एक समाचारपत्र ने साक्षात्कार (इंटरव्यू) भी किया! बाद में पता चला, कि वो टोली आज की शब्दावली अनुसार "लिबरर्ल्स" (वामपंथियों) की थी, जो हर कॉलेज में जाकर युवाओं के मस्तिष्क में यह बात डाल रही थी, कि "लक्ष्मी पूजन" का औचित्य क्या है? जब दीपावली श्री राम से जुड़ी है?" कुल मिलाकर वह छात्रों का ब्रेनवॉश कर रही थी! लेकिन उस उत्तर के बाद, वह टोली गायब हो गई!

एक और प्रश्न भी था कि श्री लक्ष्मी और श्री गणेश का आपस में क्या रिश्ता है? और दीपावली पर इन दोनों की पूजा क्यों होती है?

सही उत्तर है– लक्ष्मी जी जब सागर मन्थन में मिलीं और भगवान विष्णु से विवाह किया, तो उन्हें सृष्टि के धन और ऐश्वर्य की देवी बनाया गया! तो उन्होंने धन को बाँटने के लिए मैनेजर कुबेर को बनाया! कुबेर कुछ कंजूस वृति के थे! वे धन बाँटते नहीं थे, स्वयं धन के भंडारी बन कर बैठ गए। माता लक्ष्मी परेशान हो गई,उनकी सन्तान को कृपा नहीं मिल रही थी! उन्होंने अपनी व्यथा भगवान विष्णु को बताई! भगवान विष्णु ने उन्हें कहा, कि "तुम मैनेजर बदल लो!" माँ लक्ष्मी बोली, "यक्षों के राजा कुबेर मेरे परम भक्त हैं! उन्हें बुरा लगेगा!" तब भगवान विष्णु ने उन्हें श्री गणेश जी के दीर्घ और विशाल बुद्धि का प्रयोग करने की सलाह दी! माँ लक्ष्मी ने श्री गणेश जी को "धन का डिस्ट्रीब्यूटर" बनने को कहा!

श्री गणेश जी ठहरे महा बुद्धिमान! वे बोले, "माँ, मैं जिसका भी नाम बताऊंगा, उस पर आप कृपा कर देना! कोई किंतु, परन्तु नहीं! माँ लक्ष्मी ने हाँ कर दी! अब श्रीगणेश जी लोगों के सौभाग्य के विघ्न/रुकावट को दूर कर उनके लिए धनागमन के द्वार खोलने लगे! कुबेर भंडारी ही बनकर रह गए! श्री गणेश जी पैसा सैंक्शन करवाने वाले बन गए!

गणेश जी की दरियादिली देख, माँ लक्ष्मी ने अपने मानस पुत्र श्री गणेश को आशीर्वाद दिया, कि जहाँ वे अपने पति नारायण के सँग ना हों, वहाँ उनका पुत्रवत गणेश उनके साथ रहें!

दीपावली आती है कार्तिक अमावस्या को! भगवान विष्णु उस समय योगनिद्रा में होते हैं! वे जागते हैं ग्यारह दिन बाद देव उठावनी एकादशी के दिन! माँ लक्ष्मी को पृथ्वी भ्रमण करने आना होता है। शरद पूर्णिमा से दीपावली के बीच के पन्द्रह दिनों तक श्री गणेश जी को सँग ले आती हैं। इसलिए दीपावली को लक्ष्मी–गणेश की पूजा होती है!

सा विद्या या विमुच्यते

हमलोगों नें विद्यार्थी जीवन की प्राथमिक कक्षाओं में विद्या के विषय में यह पढ़ा है कि विद्या से विनम्रता की प्राप्ति होती है, विनम्रता से हम सुपात्र बनते हैं,सुपात्रता से हम धन अर्जन करनें में सक्षम बनते हैं, धन के द्वारा धार्मिक कृत्यों का सम्पादन सम्भव बनता है जो सुख की सम्भावनाओं की श्रृष्टि करता है।

''विद्या ददाति विनयं, विनयं ददाति पात्रताम।
पात्रतात धनमाप्नोति, धनाद्धर्मम ततः सुखम।।''

विद्या का अर्थ है ज्ञान जो अम्बर की तरह असीम है, अपार है। ऐसी असीम व अपार विद्या (ज्ञान) के वर्चस्व को सांसारिक व नश्वर सुख तक सीमित कर देना (पाश्चात्य संस्कृति व दर्शन) विद्या की परिभाषा के साथ सरासर अन्याय है व नश्वर तक सीमित पाश्चात्य दर्शन का प्रदर्शन है। हमारा दुर्भाग्य है कि आज हमलोगों के खान–पान व सोच में पाश्चात्य का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। कारण क्या है? तो कारण है हमारे शिक्षा–पाठ्यक्रम को सीमित कर देना। ऐसा करनें का दुष्प्रभाव समाज में जिन रुपों में परिलक्षित हो रहा है उनमें कुछ इस प्रकार हैं

(१) खान पान में प्रदूषण– यथा–जंकफूड खानें की ललक, फ्रीज में स्टोर किये दो तीन दिन या इससे भी अधिक समय तक रखे पके भोजन (बासी–भोजन) खानें की आदत, बाजार से पके पकायें पैक्ड भोजन खानें की आदत। इस प्रकार के भोजन को गीता में तामसी भोजन कहा गया है। कहावत है कि– **"जैसा खायें अन्न वैसा बनें मन"**।

(२) तामसी भोजन– के सेवन से हमारी बुद्धि भी तामसी बन जाती है। बुद्धि के तामसी बननें का दुष्परिणाम भयानक व पतनकारी हैं। गीता के अनुसार– **"अधोगच्छन्ति तामसाः"**। आज जिन जीवों को हम कुत्ते–बिल्ली आदि–आदि रुपों में अपनें सामने देख रहे हैं कभी ये हमारे ही तरह मनुष्य रहे होंगे और तमोगुणी प्रवृत्ति के कारण ही उनका पतन हुआ।

(३) जीवन अनन्त है– मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है, किन्तु यदि वह विवेक को अपनें सद्कर्मों से उजागर न कर मनमानें तरीके से जीवन (शास्त्र विरुद्ध जीवन) जीता है तो उसका पतन हो जाता है– गीतोक्त वचन **"अधोगच्छन्ति तामसाः"** को चरितार्थ कर देता है। आज की विद्या शरीर व मन तक सीमित है इसलिए ही आज समाज में ये दोष परिलक्षित हो रहे हैं।

(४) इस शिक्षा का दुष्परिणाम यह है कि हमारा जीवन– **दर्शन "खाओ, पियो, और मस्त रहो"** तक सीमित है। खूब पैसा कमाने की होड़ है, परिणाम स्वरूप हमारा नैतिक पतन हो रहा है। पैसा कमाने के लिये झूठ ,लूट–खसोट, पद शक्ति का दुरुपयोग, आदि–आदि साधनों का उपयोग होनें के कारण समाज में अनाचार, अत्याचार, व्यभिचार, बलात्कार, प्राकृतिक साधनों का दुरुपयोग, साधन और शक्ति का असंतुलन आदि–आदि बुराइयाँ व्याप्त हो रही हैं। इन समस्त बुराइयों से बचनें का एकमात्र उपाय है एक ऐसी शिक्षा पद्धति (प्राचीन भारतीय गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की तरह) का उद्भव जिसके द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वश्रेष्ठ व सर्वांगीण विकास हो सके, अर्थात वह भौतिक व आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में विकास की क्षमतावाला बन सके। एक ऐसी विद्या व विधा जो हमारे मन को भोगवादी न बनाकर त्यागवादी बना सके, गीतोक्त वचनानुसार **"त्यागात शान्तिननन्तरम"**। यही मानव के उत्थान, उन्नयन व प्रगति का राजपथ सिद्ध होगा। यही मनुष्य को अपार अशांति व भवव्याधि से मुक्त बनानेवाली विद्या वह विधा है। तो हमारे शास्त्रों नें विद्या को इसी दृष्टिकोण से परिभाषित करते हुवे कहा है– **"सा विद्या या विमुच्यते"** विमुच्यते का परम व्यापक अर्थ है कठिनाइयों व बन्धनों से मुक्त बना देना या मन को आत्मयुक्त बना देना। हमें इस दिशा में ही आगे बढ़कर व आत्मानंद के राजमार्ग पर आगे बढ़ाने वाली शिक्षा पद्धति को अपनाना पड़ेगा ताकि मानवता जीवंत बन सके। तो यही होगी विद्या की सही परिभाषा जिसका भाव व स्वभाव हो–

तमसो मा ज्योतिर्गमय।
असदो मा सद् गमय।
मृत्योर्मा अमृतम गमय।

आश्रम समाचार

श्री प्रेम स्मृति दिवस का आयोजन

अनंतश्री विभूषित हृदय सम्राट सदगुरुदेव स्वामी परमज्ञानानंदपुरी जी महाराज के परम शिष्य ब्रह्मलीन स्वामी प्रेमानंद पुरी जी का 20वॉ निर्वाण दिवस भंडारा 17 नवंबर 2025 (सोमवार) को स्वामी रामानंदपुरी जी की अध्यक्षता में मनाया जाएगा। कार्यक्रमानुसार– दिनांक 16–09–2025 रविवार को हीरा प्रकाश ग्रन्थ का पाठ प्रारंभ तथा दिनांक 17–09–2025 पाठ का विश्राम,हवन पूजन ध्वजारोहण तत्पश्चात श्रद्धांजलि सभा एवं लंगर भंडारे का आयोजन किया जाएगा। ✦

पावन जन्म महोत्सव का आयोजन

अद्वैत स्वरूप आश्रम, सार शब्द मिशन, ढाण्ड रोड, कैथल, हरियाणा में ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय स्वामी सार शब्दानंदजी महाराज का 115वाँ पावन जन्म महोत्सव मनाया गया। इस पावन अवसर पर दिनांक– 01.10.2025 को 'श्री रामचरित मानस, अखंड पाठ का शुभारम्भ हुआ तथा दिनांक– 02. 10.2025 को भक्ति संगीत, प्रवचन एवं मुशायरे का आयोजन किया गया। दिनांक– 03.10.2025 को ध्वजारोहण समारोह एवं अभिनंदन व सत्संग कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। ✦

श्रीनंगली साहिब में दीपोत्सव का आयोजन

श्री नंगली साहिब में दीपावली का त्यौहार बड़े धूम–धाम से मनाया गया। इस पावन अवसर पर श्री मंदिर जी के सजाबट की शोभा अत्यन्त मनोरम दिखाई दे रहा था। पूर्ण परिसर को दीपमाला से सजाया कर प्रकाशोत्सव की व्यवस्था की गयी थी। इस अवसर पर पूज्यपाद् हृदय सम्राट श्री नंगली निवासी भगवान् स्वामी स्वरूपानन्दजी महाराज की भव्य आरती, भजन, किर्तन एवं भंडारे का आयोजन किया गया। ✦

श्रीपरमपुरी धाम में दीपोत्सव का आयोजन

सिद्धपीठ श्रीपरमपुरी धाम में दीपावली का त्यौहार बड़े धूम–धाम से मनाया गया। इस पावन अवसर पर श्री समाधि मंदिर सहित पूर्ण परिसर को दीपमाला से सजाया गया। मन्दिर के चारो ओर प्रकाशोत्सव की व्यवस्था की गयी थी। इस अवसर पर पूज्यपाद् हृदय सम्राट श्री परमपुरी भगवान् स्वामी परमज्ञानानन्दजी महाराज की भव्य आरती, भजन, किर्तन एवं भंडारे का आयोजन किया गया। साथ ही साथ सिद्धपीठ श्रीपरमपुरी धाम की ओर से सभी भक्तों एवं उनके परिवार को श्री गुरु भगवानजी का शुभ आशीर्वाद सहित दीपावली की हार्दिक शुभकामनाएँ दी गई। ✦

श्रीमद्‌भागवत कथा ज्ञान–यज्ञ का आयोजन

श्री परम प्रभु की असीम कृपा से 20वाँ श्रीमद्‌भागवत कथा ज्ञान यज्ञ का भव्य आयोजन दिनांक 22 सितम्बर से 29 सितम्बर तक गांव बहिबल मंझ में किया गया। यह कार्यक्रम सुश्री देवा जी शक्ति आश्रम, मुकेरियां एवं स्वामी श्री रामानन्दजी आश्रम पनखूह के विशेष कृपा एवं सहयोग से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर दिनांक 22.09.2025 को प्रातः 10 बजे भव्य शोभा यात्रा निकाली गयी। दिनांक 22.09.2025 से 29.09. 2025 तक प्रतिदिन संध्या 08 बजे से 11 बजे रात्रि तक श्रीमद्‌भागवत कथा ज्ञान–यज्ञ कथा व्यास श्री स्वामी पुण्यानन्द पुरीजी महाराज, श्रीपरमपुरी धाम (काशी क्षेत्र) के मुखारविन्द से सम्पन्न हुआ। दिनांक 29.09.2025 को दोपहर 01 बजे से हरिइच्छा तक भंडारे का आयोजन किया गया। यह कार्यक्रम डॉ० प्रवीण कुमार, बहिबल, मंझ के द्वारा आयोजित किया गया था। ✦

खाली मन शैतान का डेरा होता है। इसे हर वक्त प्रभु के कार्यों में लगाये रखना चाहिए। –स्वामी परम!

माह दिसम्बर, २०२५ का राशिफल

प्रस्तुति– डॉ०नरेन्द्र तिवारी ज्योतिर्विद

पूर्व प्रधानाचार्य	–: सम्पर्क सूत्र :–	आवास
श्री हनुमंत संस्कृत उ०म० विद्यालय, चौकाघाट, वाराणसी ।	मो० नं० 9839143791 9044143791	नई बस्ती, मड़ौली, पो० भुल्लनपुर, (डी० एल० डब्लु०), वाराणसी।

मेष राशि– स्वास्थ्य सुख सामान्य रहेगा। बड़े लोगों की कृपा से बहुत सी समस्याओं का समाधान होगा, सामाजिक पद प्रतिष्ठा की प्राप्ति होगी। मित्र बान्धवों का समागम होगा। स्त्री, सन्तान सुख की प्राप्ति होगी।

वृषभ राशि– अपने ही लोगों से असहमति होगी। महत्वूर्ण कार्यों में विलम्ब होगा। पारिवारिक कार्यों में सफलता मिलेगी। वाणी की चतुराई से सब ठीक होगा।

मिथुन राशि– आत्मबल,मनोबल एवं विश्वास से जीविका सम्बन्धी कार्यों का विस्तार होगा। मान सम्मान की प्राप्ति होगी। घर में मांगलिक कार्य होंगे।

कर्क राशि– अपने लोगों, सगे सम्बन्धियों से भेंट होगी तथा उनसे शुभ सन्देश मिलेगा। रोजी–रोजगार में उतार–चढ़ाव एवं अचानक यात्रा का अवसर मिलेगा।

सिंह राशि– नॉकरी व्यापारादि एवं लाभकारी योजनाओं में सुधार होगा। यदा–कदा परिस्थितियों की जटिलता से काम–काज प्रभावित होगा। क्रोध करना हानिकारक होगा।

कन्या राशि– घर परिवार की समस्याओं में उल्झे रहने के कारण नए कार्यों का करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। सहकर्मियों का सहयोग प्राप्त होगा।

तुला राशि– गलत लोगों की संगति से कष्ट मिलेगा। आलस्य एवं लापरवाही से कार्यों में व्यतिक्रम होगा। आर्थिक, मानसिंक, पारिवारिक उलझनों का सामना करना पड़ेगा।

वृश्चिक राशि– घर परिवार में खुशी का माहौल बनेगा। बड़ों के सहयोग से आर्थिक लाभ होगा। स्त्री–पुत्र, मित्र, बान्धवों का सहयोग मिलेगा। अपनों से मतभेद हो सकता है।

धनु राशि– स्वास्थ्य सुख में उतार–चढ़ाव आएगा। असामयिक भाग–दौड़ से कष्ट होगा जिससे मानसिक तनाव होगा। अधिकारियों से सावधान रहें।

मकर राशि– अच्छे कार्यों को करने का अवसर मिलेगा। अच्छे लोगों की संगति से धन–मान सम्मान की प्राप्ति होगी। नए उद्योग धन्धों से लाभ होगा।

कुम्भ राशि– नॉकरी,व्यापारादि में पदोन्नति होगी। कार्य व्यवहार से सावधान रहें। परिस्थितियों की जटिलता से काम–काज प्रभावित होगा। पत्नी की उपेक्षा से हानि।

मीन राशि– स्वास्थ्य सुख सामान्य रहेगा। अपने आत्म विश्वास से समस्त विचारित कार्यों में सफलता मिलेगी। भाग्यवश लाभ का अच्छा अवसर मिलेगा।

*

–: दिसम्बर, २०२५ का मुख्य पर्व :–

०१.१२ (सोमवार)– मोक्षदा एकादशी, गीता जयन्ती।
०२.१२ (मंगलवार)– भौम प्रदोष व्रतम्।
०४.१२ (गुरुवार)– भगवान् दत्तात्रेय जयन्ती, पूर्णिमा।
०८.१२ (सोमवार)– संकर्ष्टी श्री गणेश चतुर्थी।
१२.१२ (शुक्रवार)– भारत रत्न महामना पं० मदन मोहन मालवीय जयन्ती।
१५.१२ (सोमवार)– सफला एकादशी व्रतम्।
१६.१२ (मंगलवार)– खरमासारम्भ।
१७.१२ (बुधवार)– प्रदोष व्रतम्।
१८.१२ (गुरुवार)– मास शिव रात्रि।
२३.१२ (मंगलवार)– गणेश चतुर्थी व्रतम्।
२७.१२ (शनिवार)– श्री गुरु गोविन्द सिंह जयन्ती।
३०.१२ (मंगलवार)– पुत्रदा एकादशी व्रतम्।

*

–: विनम्र निवेदनः–

सभी लेखको कवियों, साहित्यकारों, पूज्य महात्मागणों एवं पाठकों से विनम्र निवेदन है कि वे अपनी रचना/अपने विचार, उद्गार शुद्ध–शुद्ध रूप में टंकित 'परमज्ञान प्रकाश' के वाट्सअप नं0 7372000512 पर भेजने की कृपा करें। – सम्पादक!

—: विवेक वाटिका :—

—: दुखित होहिं पर विपति विसेषी :—

स्वामी दयानन्द सरस्वती एक बार गंगातट पर स्नान करने गये। वहाँ एक साधु वस्त्र धोता हुआ दिखायी दिया। उसने स्वामी जी को प्रणाम करके उनका परिचय पूछा। फिर वह उनसे बातचीत करने लगा। बातें करते करते उसने उनसे प्रश्न किया, "आप इतने त्यागी परमहंस अवधूत होकर भी खण्डन मण्डन के जटिल जाल में स्वयं को क्यों उलझा लेते हैं? उससे अलिप्त होकर क्यों विचरण नहीं करते ?" स्वामीजी ने हँसकर कहा, "हम तो सब कुछ करके भी अलिप्त ही हैं। जहाँ तक व्यवहार का प्रश्न है, हम सामान्य जनों से प्रेम करते हुए ज्ञानयुक्त व्यवहार करते हैं। उस साधु ने बीच में ही प्रश्न किया, "आप सामान्य जन के प्रेम की बात क्यों करते हैं? श्रुति (वेद) का तो मंत्र है कि आत्मा से प्रेम करो।" और इसके समर्थन में उसने बृहदारण्यकोपनिषद् के मैत्रेयी याज्ञवल्क्य का संवाद उद्धृत कर दिया। उस पर स्वामीजी ने उससे प्रश्न किया, "क्या आप आत्मा से प्रेम करते हैं?" साधु ने जवाब दिया, "हाँ।" स्वामीजी ने आगे पूछा, "बताओ प्रेममयी आत्मा कहाँ है?" साधु ने उत्तर दिया, "राजा से लेकर रंक तक और हाथी से लेकर चींटी तक सबमें आत्मा व्याप्त है।" स्वामीजी ने पुनः पूछा, "जब आत्मा सबमें व्याप्त है, तो क्या आप सबसे प्रेम करते हैं?" साधु ने जवाब दिया, "निश्चय ही।" फिर जरा नाराज हो उनसे बोला, "क्या आपको मेरी बात पर विश्वास नहीं है ? क्या आप मुझे झूठा समझते हैं ?"

स्वामीजी ने कहा, "मैं आपको झूठा नहीं समझता, मगर इतना अवश्य कह सकता हूँ कि आप उस महान् आत्मा से प्रेम नहीं करते। आपको अपनी भिक्षा की चिन्ता रहती है, आपको इस बात की चिन्ता रहती है कि आपके वस्त्र किस प्रकार साफ–सुथरे दिखाई देंगे, आपको बस अपने जीवन की चिन्ता रहती है, आपका ध्यान अपने भूखे पेट की क्षुधा का शमन करने की ओर जाता है, लेकिन क्या कभी आपने देश के लाखों नंगे भूखों के पेट की ओर ध्यान दिया है? क्या आपने उनकी खुशहाली के बारे में कभी सोचा है ? महात्मन्! यदि आत्मा से और विराट् आत्मा से प्रेम करना चाहते हो, तो पहले अपने हृदय में सबके प्रति समान ममता का भाव जागृत करो। स्वयं की भूख के साथ–साथ दूसरों की भूख का भी ख्याल करो। जो व्यक्ति दूसरों के दुःख को खुद का दुःख मानकर आचरण करता है, उसे ही 'आत्मप्रेमी' कहलाने का अधिकार है।" यह सुनते ही उस साधु के ज्ञानचक्षु खुल गये। उसे आत्मग्लानि हुई और वह स्वामी जी के चरणों पर झुक गया।

*